संदेश_

प्रतिवर्ष हिंदी विभाग के साहित्योत्सव के अवसर पर प्रकाशित होने वाली विभागीय पत्रिका 'पहचान' का नया अंक हाथ में लेते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। यह पत्रिका हमारी उन असंख्य अनुभूतियों और भावनाओं का दर्पण है, जो हमारे संपूर्ण अस्तित्व में व्याप्त है और जिन्होंने हमारे विविध अनुभवों को अनेक रंगों से सजाकर चित्रित किया है। 'पहचान' ने समय और समाज से जुड़े ठोस मुद्दों को स्वर दिया है तो दूसरी ओर दिन-प्रतिदिन दिखाई देने वाले इस जगत् की भीतरी सतह को भी उभारते हुए उसे नए आयाम दिए हैं।

वर्तमान समय चुनौती भरा है, तथा नित्य परिवर्तनशील भी। तेजी से बदलते सोशल नेटवर्किंग वाले संसार में हम सभी कभी अनजाने तो कभी योजनाबद्ध रूप से इसका हिस्सा बनने के लिए विवश हैं। हर सुबह हम अपने को नयी समस्याओं से घिरा पाते हैं और हमारी मुठभेड़ अक्सर उन परिसंवादों से होती है जो कि शैक्षणिक पाठ्यक्रम से परे यथार्थ की दुनिया का हिस्सा है। परम्परागत रूढ़ियों को छोड़कर हम अस्मिता के नए आयामों और सतहों का निर्माण करने में सक्षम हैं। हम विविध समुदायों के साथ जुड़े हैं और हमने विविध कर्मक्षेत्रों का अन्वेषण भी किया है। नए विचारों, नई पहल और नई समझदारी के साथ हमने यह भी जाना है कि अधिकार और सुविधाएँ उत्तरदायित्व की भी अपेक्षा रखते हैं। स्थिर मानसिकता को छोड़कर हम निरन्तर नई स्वतंत्र की यात्रा पर अग्रसर रहे हैं। हमारी विकसनशील मानसिकता

ही हमारी 'पहचान' है। इसी के बूते हमने यह आत्म-विश्वास अर्जित किया है, जिसके बल पर हम नए, अनजाने और प्रमुख परिवर्तनों की रूपरेखा तैयार कर पाए हैं।

'पहचान' विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक प्रतिबद्धताओं से जुड़ी रही है और विकास के भाव को प्रोत्साहित करती रही है। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे अपने मनोवेगों को आपके साथ साझा करने का अवसर मिल रहा है। महत्वपूर्ण आज यह है कि इस समाज और विश्व को बेहतर बनाने में आप अपनी शिक्षा और अनुभवों का किस प्रकार प्रयोग कर सकते हैं। मैं यह उम्मीद करती हूँ कि आप अपने खूबसूरत व्यक्तिगत स्वप्नों और आकांक्षाओं को उतनी ही दृढ़ता और शक्ति से, पूरी प्रतिबद्धता के साथ पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। आप अपनी 'पहचान' के द्वारा मिरांडा हाउस की पहचान को और अधिक विस्तार देंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

शुभकामनाओं सहित

प्राचार्या

(डॉ. प्रतिभा जोली)

अपनी बात —

समय सदा एक-सा नहीं रहता। हर युग में नए परिवर्तनों, नई चुनौतियों का उभरना लाज़िमी है। मानव सभ्यता के विकास में सूचनाओं के आदान-प्रदान का विशेष महत्व रहा है। लिपि के आविष्कार को किसी समय एक नयी क्रांति कहा गया था, जिसने संकेतों और हाव-भावों की दुनिया से बाहर निकल अभिव्यक्ति को साकार रूप दिया। तब किसने सोचा था कि यह आविष्कार एक दिन सूचना संचार के विस्तार से गति पाकर डिजिटल क्रांति का रूप ले लेगा। अत्याधुनिक संचार के नवीन साधनों ने संप्रेषणीयता को नया आयाम दिया और मनुष्य 'लोकल' से 'ग्लोबल' हो गया। 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने तकनीक के प्रयोग को प्राथमिकता देकर कम्प्यूटर के व्यापक प्रयोग पर बल दिया तो अब वर्ष 2015 से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी डिजिटल भारत का स्वप्न साकार करने की दिशा में प्रयासरत हैं। 2010 में मोबाइल और इंटरनेट नेटवर्क के व्यापक विस्तार के बाद डिजिटल कम्युनिकेशन में एक नयी क्रांति का सूत्रपात हुआ, तो वर्ष 2011 के आसपास मिस्र समेत अनेक देशों में हुई क्रांति में सोशल नेटवर्किंग और स्मार्टफोन टेक्नॉलॉजी की बड़ी भूमिका मानी जाती है।

आज विचारों के आदान-प्रदान और सोच के साझा मंच की नयी तकनीकें ईजाद हो रही हैं। ऐसे में निजी से लेकर सामाजिक जीवन में सोशल-

मीडिया की बढ़ती भूमिका और उसके प्रभाव को अन-देखा नहीं किया जा सकता। युवाओं में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का क्रेज़ दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। ऐसे में सोशल मीडिया एक लोकप्रिय संस्कृति के रूप में विकसित हो रहा है। आज बैंकिंग सेक्टर, परिवहन, भुगतान प्रक्रिया, पत्र व्यवहार तथा हमारी शॉपिंग से जुड़ी अनेक चीज़ें ऑनलाइन हो चुकी हैं। हमारे चारों ओर डिजिटाइजेशन अपनी चमक कायम कर चुका है। ऐसे में नित्य नए अनुभवों से जूझता मन अपनी 'पहचान' के लिए बेकरार होता है। इसीलिए अब की बार हमने भी अपनी पत्रिका 'पहचान' को 'डिजिटल तकनीक और हम' विषय पर केन्द्रित किया है। छात्र-छात्राओं द्वारा लिखे गए लेखों में उनकी गहन विचारशीलता और चिन्तन मनन स्पष्ट झलकता है। हमने छात्राओं के बीच इस विषय पर एक परिचर्चा भी आयोजित की। जिसमें बड़ी संख्या में अति उत्साहित होकर उन्होंने इसके विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट रूप से सामने रखा। इसी बीच एक नए परिवर्तन नोटबंदी के साथ 'कैशलेस इंडिया' का नारा गुंजरित हुआ। विद्यार्थियों ने इन विशेष मुद्दों के साथ-साथ बदलते युग, परिवेश में साहित्य की भूमिका, छात्र राजनीति एवं सामाजिक रिश्तों पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

इस बार एक विशेष कॉलम 'मेरी नज़र से' के अन्तर्गत विद्यार्थियों के

निजी अनुभव और उनके मनोमस्तिष्क में उठते अन-सुलझे चिन्तन को स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त गांधीवादी पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र तथा रंगमंच और फिल्मी अदाकार ओमपुरी पर विशेष स्मृतिलेख है।

पत्रिका को हस्तलिखित रूप देने में विभाग की तृतीय वर्ष की छात्राओं ने महत् भूमिका निभायी। पत्रिका का आवरण चित्र विषय को समझते हुए, बनाने का दायित्व एम॰ ए॰ के विद्यार्थी मरियप्पा ने बखूबी निभाया है। इसके अतिरिक्त मैं अपने सभी विभागीय साथियों और महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ प्रतिभा जैनी के सहयोग एवं स्नेहशीलता के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। 'पहचान' आगामी भविष्य में भी सम-सामयिक मुद्दों और ज्वलन्त प्रश्नों के साथ हमारे, आप सबके बीच सक्रिय रहे —

इसी उम्मीद और आकांक्षा के साथ

कविता भारिल्ल

पहचान

(हिंदी विभाग, मिरांडा हाउस की वार्षिकी)

अंक 5.

फरवरी 2017

संपादक

- डॉ॰ कविता भाटिया

मुखपृष्ठ चित्र

- मारियप्पा

हस्तलेखन कार्य

- पूजा झा
- सुप्रिया सिंह
- प्रियंका

(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

सोचविचार पृष्ठ

- रिश्तों में उलझन 6.
- डिजिटल तकनीक 10.
- साहित्य और कला सौंदर्य 14.
- फेसबुक का चेहरा 20.
- स्त्री बनाम पुरुष 27.
- नोटबंदी: विकास की ओर बढ़ते कदम 31.

कविताएँ

- जिंदगी की दौड़ 18.
- पन्नों पर जज़्बात 25.
- शब्द 36.
- अन्तर क्या 38.

मेरी नज़र से

- ये दिल्ली है मेरी जान 51.
- बारिश की सौंधी गंध 54.
- मेरा अनमनापन 59.

परिचर्चा

- सोशल मीडिया और डिजिटल इंडिया 39.

सहयोग

- आँचल पाल
- राहिल
- निहारिका
- संध्या वर्मा

पुस्तक समीक्षा

- जा पर प्रेम न संचरे... 44.
- यायावरी के बहाने... 48.

स्मृति शेष

- पर्यावरण का अनुपम प्रेमी 63.
- उम्दा अभिनय का कलाकार 68.

Campus: आसपास 72.

साहित्यिक गतिविधियाँ 99.

साहित्य संसार 101.

रिश्तों में उलझन

कितने अजीब रिश्ते हैं इस दुनिया में। कुछ रिश्ते तो जिन्दगी भर साथ देते हैं और कुछ रिश्ते जिन्दगी के रास्ते में ही साथ छोड़ देते हैं। दिलों के मिलन से एक रिश्ता स्थापित होता है। समय परिवर्तन-शील है। सब समय का खेल होता है। जिन दो लोगों को देखकर यह लगता है कि कितना मजबूत रिश्ता है इन लोगों का वही लोग एक दूसरे के सामने से ऐसे गुजर जाते हैं जैसे कोई सम्बन्ध पहले कभी रहा ही न हो। जब एक रिश्ता बनता है या टूटता है तो इसका कोई कारण नहीं होता, कारण तो अपने आप बन जाता है। एक रिश्ते को निभाना आसान नहीं होता क्योंकि किसी के प्रति मन में भाव कभी भी परिवर्तन हो सकते हैं। मन के भाव स्थाई नहीं होते यह समय के साथ परिवर्तन होते रहते हैं। यदि वह मन का भाव मजबूत है तो वह समय के बदलने से भी डगमगा नहीं सकता। जिन्दगी के रास्ते में न जाने कितने ही लोग मिलते हैं लेकिन उनमें

से कुछ ही लोग दिल के करीब होते हैं और न जाने कब वह लोग दिल के और करीब हो जाते हैं पता ही नहीं चलता। कभी - कभी रिश्तों में उलझन के कारण न चाहते हुए भी उन्हें अपने से दूर करना पड़ता है क्योंकि शायद वही सही भी है। न जाने कितने वादों को भुलाना पड़ता है और उस दर्द को सहन करना कितना मुश्किल होता है, यह बस वही जानता है जिस पर बीतती है। कुछ कहानियाँ हमेशा अधूरी रह जाती हैं। रिश्तों में उलझन पानी में बनने वाली भँवर के समान होती है। जब कोई व्यक्ति उस भँवर में फँस जाता है तो वह उसमें डूबता ही चला जाता है और अपना अस्तित्व खो बैठता है। उलझनों के कारण व्यक्ति को किसी भी रिश्ते पर कोई विश्वास ही नहीं रहता। आईना यदि टूट जाए तो उसे दुबारा जोड़ा नहीं जा सकता। उसी प्रकार विश्वास यदि टूट जाए तो जोड़ा नहीं जाता। किसी भी रिश्ते की नींव ही विश्वास होता है। यदि नींव ही डगमगा जाए तो रिश्ता कैसे बचेगा?

आज बदलते परिवेश में रिश्तों की परिभाषा जरूर बदली है, पर रिश्तों की अहमियत आज भी पहले जितनी ही है। हर स्थिति में अपने हर रिश्ते को सदाबहार रखने का एक ही मंत्र है – हर रिश्ते को समुचित आदर देना।

हर रिश्ते में स्नेह, समर्पण और आदर - ये तीन तत्व होना बेहद जरूरी हैं। क्योंकि ये तत्व होना बेहद जरूरी है। ये तत्व विपरीत विचारधारा वाले लोगों

को भी एक अटूट बंधन में बांधने का समर्थ्य रखते हैं।

जब हम इस दुनिया में आते हैं तो कितने सारे रिश्तों से घिर जाते हैं। शुरूआती दौर में तो सभी रिश्ते अच्छे लगते हैं लेकिन जब सोचने और विचारने की क्षमता आ जाती है तो कुछ ही रिश्ते अपने लगते हैं। किसी भी रिश्ते में उलझन तब स्थान लेती है जब उस रिश्ते में प्रेम समाप्त हो जाए और उस प्रेम का स्थान द्वेष लेले। बसंत के समीर और ग्रीष्म की लू में कितना अन्तर है। एक सुखद और प्राणपोषक दूसरी अग्निमय और विनाशिनी। प्रेम बसंत समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू। जिस पुष्प को बसंत समीर महीनों में खिलाती है उसे लू का एक झोंका जलाकर राख कर देता है। उसी प्रकार प्रेम जिस रिश्ते को जोड़े रखता है। द्वेष उसे जलाकर राख कर देता है। शब्दों का अनन्त सागर है लेकिन रिश्तों में उलझन को सुलझाने के लिए वह शब्दों का महासागर भी असमर्थ हो जाता है।

कई बार वर्षों के प्रेम संबंध छोटी-छोटी ग़लतफहमियों या अपने अहं के कारण टूट जाते हैं। किसी भी संबंध का टूटना या उसे तोड़ना आसान है, संबंधों में कटुता या खटास तो जल्दी आ जाती है पर पुनः मिठास आ पाना मुश्किल होता है—

'रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय
टूटे से फिर न जुरै, जुरै गांठ परि जाय।।'

एक रिश्ते को निभाने के लिए पूर्ण निष्ठा और समर्पण का भाव होना चाहिए। अपने साथी के

साथ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा। ऐसा कोई रिश्ता नहीं जिसमें उलझन नहीं होती जो उस उलझन से बाहर निकल जाए वह रिश्ता सदाबहार होता है और जो उलझ जाए वहाँ कहानी ही समाप्त हो जाती है।

मुलायम दूब पर शबनमी एहसास हैं रिश्ते निभें तो सात जन्मों का, अटल विश्वास हैं रिश्ते जिस बरतन में रक्खा हो वैसी शक्ल ले पानी कुछ ऐसा ही, प्यार का अहसास है रिश्ते। रिश्ते दिल का दर्पण है, बिना शर्तों समर्पण है।

• निहारिका शर्मा
(हिंदी विशेष, द्वितीयवर्ष)

डिजिटल तकनीक

डिजिटल तकनीक का क्षेत्र दिन पर दिन फैलता जा रहा है। अब तो डिजिटल के बिना जीवन की कल्पना करना भी मुश्किल है। डिजिटल तकनीक समस्त संसार में अपना झंडा लहरा रहा है। डिजिटल तकनीक ने मानव जीवन में इस तरह स्थान बना लिया है कि उसके आने का द्वार तो दिखाई देता है, किन्तु उसके निकलने का द्वार अदृश्य है। इस तकनीक ने दुनियां को बदला है, उसके रहने, सोचने - समझने, व्यवहार करने के तरीके को बदला है। कोई भी तकनीक जब आती है तो वह अपनी छाप हम पर छोड़ती है, जिसके चलते जीवन का नजरिया बदलता है। समाज, संस्कृति, सभ्यता. सब पर इसका सकारात्मक तथा नकारात्मक असर पड़ता है। दोनों साथ - साथ चलते हैं नकारात्मक को छोड़कर केवल सकारात्मक को ग्रहण करना बुद्धिमानी की बात है। प्रायः लोग ऐसा करते भी हैं किंतु मानव मन होने के नाते, इच्छाओं का सागर मानव मन, उत्सुकता से भरा मानव मन बहुत बार सकारात्मक चीज के तर्क पर नकारात्मक को भी जगह देता है, और समझ के साथ वह नकारात्मकता उनके जीवन का अंग बन जाती है। जब वह आदत पूरी नहीं होती तो उसका परिणाम अपराध होता है।

डिजिटल तकनीक ने कहीं हमारे जीवन को संवारा है तो कहीं जीवन को बिखेर भी दिया है। माँ की लोरी और कहानियों के स्थान पर मोबाइल गेम आ गया। परिवार का आपसी संवाद व्हाट्सप चैट में बदल गया। अब हम बाहर घुमने-टहलने नहीं जाते, फेसबुक पर चक्कर लगाकर देश - दुनियां की खबर ले लेते हैं, भले ही खुद के परिवार में क्या चल रहा है उसका पता न हो

यह है बदलाव, परिवर्तन का चक्र ऐसा घुमा कि सब कुछ बदल कर रख दिया। यह बदलाव दिन-ब-दिन और-और बदलता जा रहा है। आज हम डिजिटल इंडिया की बात करते हैं। स्मार्ट विलेज गांव-गांव शहर-शहर पूर्ण रूप से डिजिटाइज़ करने का सपना साकार किया जा रहा है। ढेरों सुविधाएँ, हमें मुहैया करायी जा रही हैं। आज अलग-अलग ढेरों चीज़ों को याद करने की आवश्यकता नहीं, एक फोन लीजिए पूरी दुनियाँ उसमे समाहित है। एस॰ एम॰ एस॰ पैक वाला ज़माना अब ढेरों ऐप में बदल गया व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, हाइक, हैंगआउट आई॰ एम॰ ओ॰, इंस्टाग्राम और न जाने क्या-क्या। यदि सही मायने में सोंचे तो क्या सचमुच में हमें इन तमाम ऐप की आवश्यकता ज़्यादा है?

2जी, 3जी, 4-जी इंटरनेट की चौथी पीढ़ी और न जाने कितनी और पीढ़ी आएगी और मानव मन पर अपना रौब जमाएगी।

पूरे देश को ऑनलाइन, प्लेटफॉर्म पर लाकर खड़ा करने में सभी लगे हैं कैशलेश इंडिया, इंटरनेट बैंकिंग लेकिन प्रश्न यह है कि क्या हम सुरक्षा की दृष्टि से इतने सशक्त हैं कि हम पूरे भारत को नेट बैंकिंग के जरिए से जोड़ लें। हाल ही में लाखों क्रेडिट कार्ड की सूचना को हैक कर लिया गया। इससे हमारे सुरक्षा स्तर को देखा जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं तकनीक तकनीक के ढेरों आयाम हैं और इनकी मदद से किसी भी देश, राष्ट्र को विकसित तथा सशक्त बनाया जा सकता है। लेकिन इस चकाचौंध ने मानव मन को हर लिया। मनुष्य सही गलत, जरूरी, गैर-ज़रूरी का फर्क करना भूल चुका है। ढेरों ऑनलाइन शॉपिंग कंपनियां अपने लुभावने ऑफर से मनुष्य समाज को ठग रही हैं और मनुष्य बड़े प्रसन्नता से खुद को ठगवाए जा रहा है।

जहां आधी से ज़्यादा आबादी रोटी की मोहताज हो, ऐसा गरीब तबका जिसे चाँद भी रोटी नज़र आता है, वह पे-टी॰-एम (Paytm) कैसे भरेगा। स्मार्ट फोन कहां से आएगा?

यह बड़ा प्रश्न है।

तकनीक ने जीवन को रफ्तार दिया और साथ ही गैर जरूरी को स्थान भी। जिस उम्र में मां - बाप, घर - परिवार, जीवन के नैतिक मुल्यों को ग्रहण करना चाहिए उस उम्र के बच्चे आज मोबाइल रखा करते हैं। समय तथा उम्र से पहले ढ़ेरों ऐसी जानकारी को ग्रहण करते हैं, जो न ही उस बच्चे के लिए सही होती है न समाज के लिए फिर प्रश्न यह उठता है कि आखिर क्या रणनीति होनी चाहिए जिससे डिजिटल तकनीक समाज को भटकने तथा भड़कने की अग्रसर न करे। हम आज ढ़ेरों ई-बुक की मदद से ज्ञान वर्धन कर सकते हैं और शिक्षा के क्षेत्र में यह एक सराहनीय पहल है। लाखों किताबें हम एक डिवाइस में सुरक्षित रख सकते हैं तथा उसका अध्ययन - अध्यापन कर सकते हैं। आज स्याही- कलम का जमाना नहीं रहा विद्यार्थी एक लैपटॉप से ही अपनी सारी पढ़ाई करता है और यही विकास का स्तर है, लेकिन इंटरनेट पर किसी जानकारी को पढ़ने के दौरान अगल - बगल जो गैर जरूरी, भड़काऊ सामग्री क्लिक करती हुयी पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है, उसे डिजिटल तकनीक का दूसरा पहलू कहते हैं। जो समाज को ऐसी दिशा की ओर अग्रसर करती है जिसकी परिणति अपराध है, नैतिकविहीन समाज है।

अब मैट्रोमोनियल का ज़माना है जहां दुनिया के कोने - कोने से लोग अपनी जानकारी को साझा करते हैं तथा अपनी रुचि को सांझा करते हैं। तथा अपनी रुचि को व्यक्त करते हैं। यह बहुत सराहनीय सुविधा है। किन्तु फ्रॉयड का बहुत बोल - बाला है। सच मानिये जितना धोखा इस माध्यम में है उतना धोखा तो उस ज़माने में भी लोग नहीं करते थे जब लड़का - लड़की सात फेरों के बाद चेहरा देखते थे। अब तो खुद कि खुद से लेने का ज़माना आ गया है। मेरा इशारा है 'सेल्फी' की तरफ। तकनीक किस प्रकार अपने कब्जे में हमें गिरफ्त कर लेती है, और बिल्कुल बेखबर।

कितनें ही वाकयात हो चुके हैं कि पहाड़ी की चोटी से सेल्फी लेते दुर्घटना हुयी तो कभी किसी प्रकार कि दुर्घटना घटी किन्तु हमें सेल्फी लेनें में हमेशा से ही आनंद मिलता आया है। चाहे वह सेल्फी हो या अन्य

साइबर क्राइम दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। सोशल साइट्स पर हम उसी प्रकार महफ़ूज़ नहीं जिस प्रकर आधीरात में दिल्ली के सड़कों पर। फिर हम बिना विवेक का इस्तेमाल किए अपनें जीवन का एक बड़ा हिस्सा इन तमाम तक्नीकों में झोंक रहे हैं। और आगे भी झोंकते रहेंगे।

समय बदल गया, पहले हमें अनाज, रोटी, दवा की आवश्यकता है किन्तु हमारे यहां करोड़ों - अरबों रुपये का स्कैम बनता जिसके माध्यम से मुफ्त इंटरनेट, कॉल्स की सुविधा दी जा रही है। किन्तु पहली जरूरत क्या है? ज़रूरी से भी ज़रूरी क्या है? इसपर विचार करना अभी बाकी है।

• मनीषा सिंह
(एम. ए. हिंदी)

साहित्य और कला सौंदर्य

किसी भी कला का आधार उसमें सौंदर्य बोध का प्रदर्शन होता है और सौंदर्य हर किसी कलाकार को अवश्य ही प्रेरित करता है। आम जन भी इससे अछूता नहीं रह पाता, अर्थात आम जन हो या कोई भी विधा का कलाकार जहां उसे आनंद प्राप्त होता है वहीं उसे सौंदर्य की अनुभूति को कलाकार ही गहराई तक ले जाती है। क्योंकि कलाकार का हृदय गहराईयों में तैरने का, या सोचने का, अनुभूति करने का रचना करने का होता है। साधारण आम आदमी की तरह वह ऊपरी सतह पर उक्त कार्य करने का आदी नही होता। ना ही उसे यह पसंद होता है।

सौंदर्य से मानव प्राचीन काल से ही प्रभावित रहा है। किसी भी चित्र में सौंदर्य के विभिन्न रुपो को प्रदर्शित करने में कलाकार अपनी पूर्ण रचनात्मकता और अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता रहा है। परंतु भारतीय चित्रों में अधिकांशत: चित्रण देखकर लगता है कि वह भारतीय साहित्य से भी प्रेरित रहे है और यह सत्य भी है कि भारतीय साहित्य में सदैव ही प्रकृति का बहुत ही सुंदर और मनमोहक वर्णन किया गया है। जिससे सहज ही अनुमान लगाया

जा सकता है कि साहित्य का योगदान भारतीय चित्रकला के लिए अविस्मरणीय है।

तितली को देखकर पकड़ने लगते है। लेकिन छिपकली को देखकर फौरन नजर घुमा लेते है, है ना। गुलाब के फूल को तोड़कर सीने से लगा लेते है, प्यारी नन्हीं सी बिल्ली को गोद में उठाकर पुचकारने लगते है लेकिन मेंढक की शक्ल देखते क्यों नाक-मुंह सिकोड़ने लगते है; सोचा अपने कभी? तो अब सोचिये। व्यवहारिक रूप से सौंदर्यशास्त्र 'एस्थेटिक्स' का उद्गारन यहीं से शुरू हो जाता है। सौन्दर्य में प्रबल आकर्षण होता है, कुरूपता में विकर्षण। ऐसा क्यो? क्योंकि प्रकृति में वैषम्य है, सब कुछ द्वंद में है, कुरूपता भरी पड़ी है, इसलिए सौन्दर्य की कदर है। स्तुति-वंदना है। सौंदर्य का अस्तित्व ही हरगिज न होता यदि संसार में साथ-साथ कुरूपता न दिखती। दरअसल दोनों एक दूसरे के पूरक है। दोनों का सह-अस्तित्व ही हमें उनके निजत्व के प्रति जागरूक बनाता है।

सत्य है कि सौंदर्य आकर्षण ही हमें लालायित करता है कि उसे भोगे, अपने मन और मस्तिष्क के माध्यम से इस परिप्रेक्ष्य में यह उचित प्रतीत होता है कि कोई भी कलाकार अपनी कला में अपनी सूक्ष्म दृष्टि व रचनात्मकता से किसी भी विषय में उस अपने भाव

प्रदर्शित करता है तो सौन्दर्य बोध का विशेष ध्यान रखता है चाहे वह विषय सुखद हो अथवा दुखद।

भारत में सौंदर्य के प्रति प्राचीन काल से ही आकर्षण रहा है। वैदिक युग में ऋषियों ने प्रकृति में असीम सौन्दर्य की झलक देखी और उसके प्रति अनेक उदार भाव प्रकट किए हैं फिर भी सौन्दर्य - सम्बन्धी शास्त्र के अंतर्गत ही हुआ है और काव्येत्तर कला, उसी को स्वीकार करती है।

भारतीय साहित्य में काव्य तथा कलाओं को एक ही धरातल प्रतिष्ठित करने की चेष्टा भी की गई है। ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध है जहां साहित्य और कलाओं को साथ-साथ स्मरण किया गया है। भर्तृहरि ने साहित्य, संगीत तथा कला विहीन मनुष्य को पशु माना है। अधिकांश चित्रकारों ने पौराणिक, धार्मिक, साहित्यिक ग्रंथ रामायण, महाभारत वेद, पुराण, समस्त साहित्यिक काव्य ग्रंथ, गद्य, आदि... चाहे जो भी हो इनसे, उनके काव्य सौन्दर्य और समाज में इनके आदर व प्रेम तथा ख्याति से प्रभावित होकर उन पर आधारित चित्रों को अवश्य ही बनाया। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य और कला दोनो आपस में एक दूसरे के सौन्दर्य से प्रेरणा लेते रहे हैं और अपनाते भी रहे। जिससे चित्रकला को तत्कालीन समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती रही और आज भी वर्तमान में जो साहित्य सौंदर्य से परिपूर्ण प्रतीत होता

होता है। उससे चित्रकार या कोई भी कलाकार अछूता नही रह जाता।

• सुप्रिया
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

जिंदगी की दौड़

सपनों को पाने की आशा में अपने कहीं छूट जाते हैं।
मंजिल को पाने की अभिलाषा में दिल कहीं टूट जाते हैं।
जिंदगी की दौड़ में आँसुओं की कोई अहमियत नही बचती
उम्मीदों के मोड़ पे खुशियों की कोई खासियत नही बचती

दिल का रिश्ता मंजिल की चाहत के सामने छोटा पड़ जाता है
जैसे कोई सिक्का कभी खोटा बन जाता है,
दिल का कोई मायना ही नहीं है।
जैसे खुद के चरित्र का कोई आईना ही नही है।

क्यों हम इतना भागते जा रहे हैं ?
क्यों हम प्यार को टालते जा रहे हैं ?
क्यों हम अपनी जिंदगी को ठहराव नही देते
क्यों हम अपनों की ओर झुकाव नही देते

दिल की अहमियत को समझना होगा
अपनों की कीमत को समझना होगा,
क्योंकि मंजिल को पाने की उम्मीद में अपने कहीं खो जाएं।

जिंदगी के वो हसीन लम्हें कहीं सो जाएँगे।

फिर बचेगी तो सिर्फ तन्हाई
हमारे साथ रहेगी गमों की परछाई
हम भूल जाते हैं कि जिन सपनों की तरफ हम
भाग रहे हैं वो सपने हमारे हैं ही नही।
सिर्फ दिल के रिश्ते ही हमारे हैं, जो सबसे प्यारे हैं।

• आयुषी सिंह
(गणित विशेष, प्रथम वर्ष)

फेसबुक का चेहरा

सोशल नेटवर्किंग की दुनिया से हमें जो उपहार मिले हैं उनमें से एक है – फेसबुक (FB) इसे लोगों को एक-दूसरे से जोड़ने के अलावा तुरंत संदेश भेजने तथा अपने संदेशों के आदान-प्रदान के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम माना जा रहा है। 4 फरवरी 2004 को मार्क जुकरबर्ग के हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के कमरे से लाइव हुआ फेसबुक आज पूरी दुनिया में एक नया मील का पत्थर साबित हो चुका है। फेसबुक के आगमन से अभिव्यक्ति की आजादी के साथ-साथ संवाद की गति भी तेज हो गई है। आज सूचनाएँ अखबार, टेलीविजन से पहले फेसबुक पर आ जाती है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में भी फेस-बुक को अहम स्थान प्राप्त है।

फेसबुक पर पृष्ठ तैयार करते समय हमें अपना नाम, छायाचित्र, जन्मतिथि और कार्यस्थल आदि का ब्यौरा देना होता है इसके माध्यम से हम अपने परिचितों को ढूँढ सकते हैं। इस तरह फेस-बुक ने दूरियों को समाप्त किया है। आज के युवाओं के लिए तो फेसबुक उनके जीवन का एक ऐसा अहम हिस्सा बन चुका है जिसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

फेसबुक के माध्यम से समाचार, विचार तथा वीडियो को साझा कर सकते हैं, तो वहीं किसी विशेष समय में हम क्या कर रहे हैं- उसे भी 'अपलोड' कर सकते है। यदि किसी कार्यक्रम के बारे में सूचना या रिपोर्ट अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचानी हो तो यह माध्यम अत्यन्त लाभकारी है। फेसबुक की दुनिया में 'लाइक' तथा 'शेयर' का खेल चलता रहता है। हाल ही में फेसबुक और ट्विटर के आपसी सहयोग द्वारा निकट भविष्य में फेसबुक एक ऐसा सॉफ्टवेयर जारी करेगा, जिसके माध्यम से फेसबुक पर होने वाला 'स्टेट्स अपडेट' सीधे ट्विटर पर दिखेगा। शैक्ष में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार 31% व्यक्ति जानकारी बढ़ाने के लिए, 29% व्यक्तिगत अभिव्यक्ति के लिए, 22% सामाजिक सरोकारों के लिए, 15% समय बिताने के लिए तथा 03% अधिक से अधिक मित्र बनाने के लिए फेसबुक का उपयोग करते है।

कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि किसी एक मुद्दे पर किसी के द्वारा कुछ लिखा गया और उस पर 'लाइक' के साथ विचार-विमर्श चल पड़ा। कभी सकारात्मक तो कभी नकारात्मक, कभी रोष तो कभी व्यंग्य पूर्ण विचार यहाँ देखे जा सकते है। कभी किसी विषय पर खींचातानी तो कभी अनुभवों की साझेदारी। कभी-कभी फेसबुक पर दिए गए कमेण्ट्स से

वाद-विवाद का खतरा भी बन जाता है। जब तक अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का पालन सही ढंग से हो, तब तक तो ठीक, परन्तु कई बार इस स्वतंत्रता का अतिक्रमण भी देखने को मिल जाता है। वास्तव में फेसबुक अभिव्यक्ति का संगम है, जहाँ हम हजारों विचारों से रूबरू होते है। परन्तु इसका उपयोग व्यक्तिगत हित के साथ-साथ सामाजिक हित को ध्यान में रखकर करना चाहिए। आज तो फेसबुक पर अभिव्यक्ति की आजादी को लेकर मंथन की जरूरत है।

आज हम प्रसन्न हों या दुःखी। किसी के घर खुशी हो अथवा गमी, किसी के साथ कोई-दुर्घटना हुई हो या कोई फिल्म देखी हो अथवा कहीं किसी जगह पर जा रहे हों तो हम अपनी ऐसी व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों को साझा करते है। पर ऐसी अभिव्यक्तियों को सार्वजनिक बनाते समय सामाजिक हितों और उनकी उपयोगिता पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए।

फेसबुक के देश-विदेश में खुशी की बात करें तो इसके आंकड़े लगभग एक सौ सत्तर करोड़ के आसपास है। लेकिन समस्या यह है कि इन सब लोगों की अपने क्षेत्र के अनुसार भाषा अलग-अलग है। लेकिन अब कंपनी फेसबुक पर पोस्ट का अनुवाद ५५ भाषाओं में लेकर आ रही है। जिससे अलग-अलग भाषाओं की समस्या को दूर किया जा सकेगा।

फेसबुक की उपयोगिता के साथ इसके साथ कुछ नकारात्मक पक्ष भी जुड़े है। जैसे - फेसबुक पर दी गई जानकारी केवल घोषित मित्रों तक न रहकर सार्वजनिक हो जाती है। फेसबुक के हर नए संस्करण के बाद प्राइवेसी सेटिंग बदलकर सार्वजनिक हो जाती है। इसमें सत्यता और विश्वसनीयता की कमी भी है। फेसबुक पर जाली प्रोफाइल बनाकर आसानी से अन्य उपयोग - कर्ताओं की जानकारी ली जा सकती है और उसका दुरुपयोग भी किया जा सकता है। फेसबुक ने हमारी रचनात्मकता, कार्यकुशलता और गुणवत्ता को भी प्रभावित किया है। कनाडा की एक यूनि- - वर्सिटी में हुए एक शोध के मुताबिक कम उम्र के युवा फेसबुक पर होने को स्टेटस सिंबल मानने लगे हैं। फेसबुक तथा अन्य सोशल नेटवर्किंग साइट्स का इस्तेमाल करते समय हम इतना अधिक व्यस्त हो जाते है कि सोशल बनने के फेर में पारिवारिकता से दूर हो जाते है। अमेरिका में फेसबुक यूजर्स पर हुई एक रिसर्च से ज्ञात हुआ कि फेसबुक पर ज्यादा समय बिताना अवसाद बढ़ा रहा है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स की ये आभासी दुनिया यूजर्स को वास्तविकता से परे ले जा रही है। यदि युवाओं को अपनी क्रिएटिविटी और फिटनेस बनाए रखना है तो उन्हें इस वर्चुअल दुनिया से बाहर आना होगा। सोशल साइट्स लोगों को एक

दूसरे से जोड़ने के लिए है परन्तु जो युवा इन्हें अपनी दुनिया मान बैठे हैं, उन्हें आत्ममंथन की आवश्यकता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था का बुनियादी पहलू है परन्तु किसी भी सभ्य समाज में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता अराजक, उच्छृंखल एवं अमर्यादित नहीं होनी चाहिए।

• अंजली दहिया
• पूजा रानी
(एम.ए हिंदी)

पन्नों पर जज़्बात

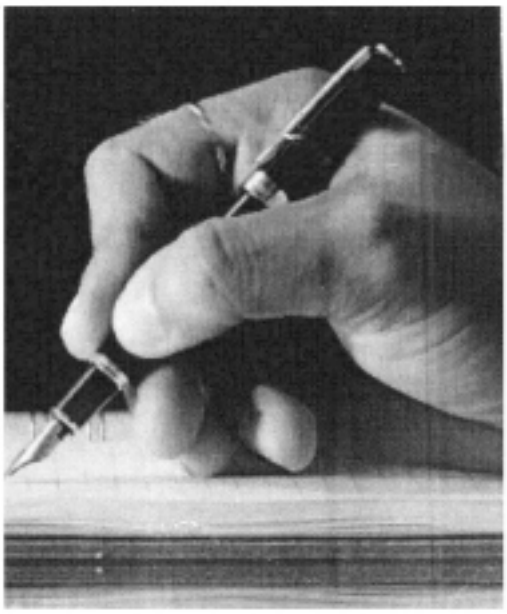

कुछ कर पाती या न कर पाती,
मैं तुमको विश्वास दिला पाती।

अगर होती बातें दो पल भी,
तो कुछ दर्द मेरा कम कर पाती।

सही ग़लत का तो पता नहीं,
मेरा सच मैं तुम्हें बता पाती।

चीख रहा मेरा अंतर्मन जोकि,
उसको तुम्हें दिखा पाती।

आवाज़ मेरी जो थक बैठ चुकी,
थोड़ा तुमको भी सुना पाती।

खौल रहा अंदर है, जो भी,
उसको तनिक विराम दिला पाती।

तुम सुन लेते दो पल को भी,
खुद को साहस फिर दे पाती।

ग़लत बोलते हैं मुझको जो भी,
उनको सच मैं बता पाती।

जब बिन जाने ही राय बना ली,
तुम तक सच फिर मैं कैसे पहुँचा पाती।

दर्द हुआ है ये जान मुझे कि,
मैं अब तुमसे नज़रें नहीं मिला पाती।

तुमसे छुपती हूँ हर पल कि,
सच को बेनकाब काश मैं कर पाती।

चल रही राह पर सच की,
उसपर ले तुमको भी चल पाती।

अपने मन की ही जो सुन लेते तुम,
तब तुमको मैं सही नज़र आती।

साथ चल पड़ते हम दोनों जो कि,
फिर मैं दुनिया से भी लड़ जाती।

• अतीक्षा
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

स्त्री बनाम पुरुष

आजकल कई जगह 'पुरुष विमर्श' की चर्चाएँ सुनी। जब भी पुरुषों की बेतुकी व बिना सिर पैर वाली यातनाओं भरी बातों को सुनती हूँ तो गुस्सा कम, हँसी ज्यादा आती है। उनकी बातें सुनेंगें, तो लगेगा जैसे न जाने कितने वर्षों से कितने ज्यादा दबाए गए हैं, सताए गए हैं। स्त्रियों द्वारा फेसबुक पर भी कुछ लड़कों के विचार पढ़े - 'पुरुष विमर्श' के बारे में। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श तो चर्चा में थे ही, पर ये 'पुरुष विमर्श' की उत्पत्ति अभी नई - नई है। इसका केंद्र, इसकी शुरुआत के बारे में अभी मुझे जानकारी नहीं, जब मुझे पता चलेगा तो आप तक पहुँचाने का प्रयास अवश्य करूँगी। लड़कों की भी कई समस्याएँ, अब कितने गिनाऊं... फिर भी कुछ के नाम गिनाने तो जरूरी हैं, तभी तो इस नव विमर्श के बारे में जानकारी मिल सकेगी। उनकी समस्या ये है कि लड़की वालों को सरकारी नौकरी वाला लड़का ही चाहिए होता है, वह पैसे वाला भी होना चाहिए और सुंदर भी। दूसरी समस्या ये है कि उनके अनुसार लड़कियों की अपने भावी पति के विषय में इच्छाएँ अनंत हैं जैसे वह गुड लुकिंग हो, स्मार्ट हो, व्यवहार में अच्छा हो, राजकुमार जैसा हो, लविंग और केयरिंग हो इत्यादि इत्यादि। उनकी और भी समस्याओं की खोज

अभी जारी है, उम्मीद करती हूँ कि उनकी सभी समस्याओं की सूची जल्दी ही जारी कर दी जाएगी। जिससे हमें 'पुरुष विमर्श' को समझने में आसानी हो। अरे ये तो कुछ भी नहीं कॉलेज आते वक्त कितनी जगहों पर पोस्टर लगे देखे जिस पर लिखा था कि पत्नी से सताए गए पति हमसे आकर मिलें, उनकी सभी समस्याओं का निदान यहाँ किया जाएगा। अकिन मानिए वो पोस्टर देखकर तो मैं औचक्की रह गई, नीचे कॉन्टेक्ट नं. भी लिखा था, अब तक तो फोन नहीं कर पाई हूँ पर मन करता है कि एक बार तो फोन करके जरूर पूछूँ कि 'भैया किस-किस प्रकार की यातनाओं से सताए पुरुष आते हैं' आपके पास। आप उनका समाधान कैसे करते हैं?

बहरहाल, लड़कियों की पति विषयक जितनी भी भावनाओं का जिक्र इस विमर्श में किया गया है, मुझे नहीं लगता कि सभी की यह इच्छाएँ पूरी होती होंगी। एक बार परिवार के साथ मंदिर गई थी घूमने, दो परिवारों को देखा... शायद ब्याह-दान की बातचीत करने आए थे। लड़का - लड़की का देखा-देखी भी होना था वहीं। मैंने सोचा एक नया रिश्ता जुड़नेजा रहा है। ज़रा देख लूँ थोड़ी देर... किनारे में खड़ी हो गई... लड़की को शो पीस की तरह लाकर बिठाया गया और फिर जो सवालों का दौर चला सो निरंतर चलता ही रह गया और वह भी एकतरफा। सभी सवाल लड़के और उसके परिवार की तरफ से और जवाब लड़की की तरफ से। खाना बना लेती हो ने, क्या-क्या बनाना आता है, मौसाहारी तो पका

लेती होगी, उधर से बच्चे ... आपको Maggie बनाना आता है न और Pizza ... कपड़े धो लेती हो। बर्तन-वर्तन तो धो ही लेती होगी, बड़े परिवार में adjust तो हो जाओगी न ... पाँव - हाथ दबाना, सेवा करना तो जानती ही होगी ... अच्छा नौकरी करती हो या नहीं... कहाँ तक पढ़ी हो ... अंग्रेज़ी बोलना तो जानती हो न...। बाप रे बाप इन्हें बहू चाहिए या मशीन, इतने सवाल, उफ्फ। इतना ही नहीं, उन्होंने लड़की को चला कर देखा, उससे हिंदी में, अंग्रेजी में और अपनी देशीय भाषा में भी सवाल पूछे। कितना uncomfortable महसूस कर रही थी वो तब डरी-डरी सी थी।

लड़की की बात करते हैं, लड़कों की चाहत का भी कोई अंत होता है, उन्हें भी तो लड़की सुंदर चाहिए, सुशील चाहिए, कम बोले, मीठा बोले, खाना बनाती हो, अच्छी पत्नी, अच्छी बहू, अच्छी भाभी, अच्छी माँ बन सके। साथ में अपने पति के काम में उसकी मदद कर सके, उतनी शिक्षित व गुणवान हो, मतलब 'All in one' जनाब इतना तो मशीन भी काम नहीं करती, ये तो इंसान है। हमें मनुष्य समझ लें यही बहुत है, देवी का दर्जा तो हम पर बोझ बढ़ा देता है, असहनीय बोझ।

अक्सर यह चर्चा की जाती है लड़कियाँ पढ़े लिखें, आत्मनिर्भर बनें, संस्कारी हो, पर इस पूरी कवायद में हम लड़कों के बारे में विचार करना है। भूल गए। कहीं न कहीं ये बात लोगों के मन में घर कर बैठी है कि आखिर लड़कों की चिन्ता करने की जरूरत ही क्या है।

जबकि आज के समय में लड़कों के बारे में व्यापक विचार किया जाना जरूरी है। अगर लड़कों के शिक्षा ऐसी ही अधूरी (केवल किताबी ज्ञान तक) रही तो जिस तरह से समाज में अपराध बढ़ रहे हैं - बढ़ते ही जाएंगे। जैसे ....

लड़कियों के साथ होने वाले अपराध - छेड़छाड़। बलात्कार, धोखे से शादी करना आदि - आदि आज भी अपराध के गंभीर मामलों में पुरुष ही क्यों जिम्मेदार होते हैं। सड़क चलते थूकते हुए, गंदी - गालियाँ देकर बात करते हुए तो कहीं बेशर्मी से लड़कियों को छेड़ते हुए - आखिर लड़के ऐसे क्यों होते हैं? और क्या ऐसे लड़कों को शिक्षित माना जाय? आजकल तो संभ्रान्त और पढ़े - लिखे घरों के अच्छे घरों के लड़कों भी कई अपराधों में शामिल होते हैं जैसे कार चुराना, शराब पीकर गाड़ी चलाना आदि। वास्तव में सारा असामंजस्य और असन्तुलन उस समाज क्रम में है जिसके कारण पुरुष अपनी वर्चस्ववादी भूमिका से बाहर निकलकर सोच ही नहीं पाता।

समय है, लड़कों के आचार व्यवहार पर विचार किया जाए। जिस तरह लड़कियों को घरों में संस्कार सिखाए जाते हैं, वैसे ही लड़कों को भी सिखाए जाए परिवार और समाज के प्रति उन्हें सजग और जिम्मेदार बनाया जाए। लड़कियों के प्रति सम्मान की भावना भी सिखाई जाए। सच में तभी समाज सुंदर और सार्थक बन सकेगा।

• पूजा रानी
(एम.ए हिंदी)

नोटबंदी: विकास की ओर बढ़ते कदम

यह बात सौ प्रतिशत सत्य है देश ने विकास के रास्ते पर कदम बढ़ाना प्रारंभ कर दिए हैं। केन्द्र सरकार ने नोटबंदी करके चारों दिशाओं में फैली भ्रष्टाचारी अव्यवस्था पर करारी चोट की है। इससे जहाँ अवैध रूप से कमाई करने वालों पर तुषारापात हुआ है, वहीं आम जनता के लिए प्रगति के द्वार खुलते हुए दिखाई दे रहे हैं। नोटबंदी से पहले हर विपक्षी राजनीतिक दल के निशाने पर केन्द्र सरकार रही भी। इसके बाद भी विपक्ष ने सत्ता पक्ष को दोषी बताने की हर कार्यवाही की है। विपक्ष ने हमेशा ही कभी कालेधन के मुद्दे पर तो कभी विदेश यात्राओं को लेकर केन्द्र सरकार के मुखिया नरेन्द्र मोदी को आड़े हाथ लिया, लेकिन नोटबंदी के बाद ऐसे आरोप लगाने वालों की बोलती बंद हो गई है। सर्वे संस्थाओं द्वारा किए गए वर्षों में भी यह साफ हो गया है कि नोटबंदी का कदम काले धन पर लगाम लगाने का सबसे सटीक कदम है। इतना ही नहीं देश की जनता ने इस कदम का पूरा समर्थन किया है। विरोध केवल वही लोग कर रहे हैं, जो सरकार के विरोध में हैं। उन्हें तो केवल सरकार के विरोध करने का बहाना चाहिए। जहाँ तक हमारे देश के विरोधी दलों की बात है तो यह कहना तर्कसंगत होगा कि उन्हें केवल सरकार को घेरने का बहाना चाहिए। पहले वह काले धन लाने के मुद्दे पर सरकार को घेर रहे थे, जब सरकार ने काले धन को बाहर निकालने का उपक्रम प्रारंभ किया तो इन्हीं राजनीतिक दलों

ने फिर से केन्द्र सरकार को कठघरे में खड़ा करने का निरर्थक प्रयास किया है। मेरी समझ में एक बात नहीं आ रही कि विपक्ष आखिर चाहता क्या है। क्या वह देश में ऐसी सरकार चाहता है कि वह विदेशी संकेत पर काम करे, अगर ऐसा है तो यह देश के लिए अत्यंत ही घातक कदम कहा जा सकता है। आज देश की जनता इस बात को भलीभांति समझ रही है कि कौन सा कदम देश के हित में है और कौन सा विरोध में। इसलिए वर्तमान में राजनीतिक दलों को यह भ्रम लगभग छोड़ देना चाहिए कि वह जनता को भ्रमित कर सकते हैं।

विपक्षी राजनीतिक दलों द्वारा सरकार की नोट बंदी के विरोध में बाजार बंद का आह्वान किया है। इस बाजार बंदी के आह्वान का सोशल मीडिया पर देश की जनता ने कई गम्भीर सवाल उठाए हैं। यहाँ तक कि भारत बन्द के इस अभियान का भारत की जनता ने शत प्रतिशत विरोध ही किया है। हजारों में एक दो समर्थन की पोस्ट केवल राजनेताओं की भी होती है। जब सोशल मीडिया पर भारत बंद का जबरदस्त विरोध किया जा रहा है, तब कांग्रेस सहित अन्य विरोधी दलों को देश की जनता की आवाज पर भी ध्यान देना चाहिए। इन दलों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि देश भ्रष्टाचार से बुरी तरह से प्रताड़ित हो चुका है। अब जब सरकार ने कालेधन और भ्रष्टाचार के लिए अभियान चलाया है तो देश की जनता के साथ राजनीतिक दलों को भी इसका समर्थन करना चाहिए। सोशल मीडिया पर नोटबंदी पर जो भी पोस्ट दिखाई दे रही है। उनमें

हर कोई भारत बंद का विरोध करता दिखाई दे रहा है, यहाँ तक कि लोग अपने मित्रों से यह भी कह रहे हैं कि मेरा जो भी मित्र भारत बंद का समर्थन कर रहा है, वह मुझे मित्र सूची से हटा दे, क्योंकि मैं राष्ट्रभक्त होने के कारण भारत बंद का विरोध करता हूँ।

देश के राजनीतिक दलों द्वारा वर्तमान केन्द्र सरकार के बारे में यह प्रश्न हमेशा चर्चा में रहता है कि मोदी सरकार के आने के बाद सामाजिक, आर्थिक और सुरक्षा की दृष्टि से क्या बदलाव हुए हैं। उनके लिए सरकार की नोटबंदी उचित जवाब हो सकता है कि भाजपा और स्वयं नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रवादी नीतियों को घोषित करते हुए जनता का समर्थन प्राप्त किया है। राष्ट्रवाद का आशय यही है कि देश की एकता व अखंडता एवं सुरक्षा के साथ जनता के कल्याण के लिए सरकार का ध्यान केंद्रित रहे। इस संदर्भ में मोदी सरकार द्वारा की गई पहल की समीक्षा की जा सकती है। देश में अलगाववादी आतंकवादी और देश विरोधी तत्व हैं, उनके खिलाफ कड़ाई से कार्यवाही की जा रही है। सीमा का अतिक्रमण कर भारत में हिंसा करने वालों का सफाया किया जा रहा है। यही नहीं दुश्मनी करने वाले पाकिस्तान के खिलाफ सर्जिकल स्ट्राइक जैसी कार्यवाई की गई। इसके साथ ही कश्मीर के अधिकांश अलगाववादी नेता जेल में हैं। सुरक्षा को सुदृढ़ करने एवं सेना की मारक क्षमता बढ़ाने के लिए आधुनिक हथियार उपलब्ध कराए जा रहे हैं। सीमा पार से होने वाले आतंकवाद को हवा देने का काम करने वाली ताकतों का

भंडाफोड़ करने वाली केन्द्र सरकार के अभियान के बाद हमारे देश में ही ऐसे बयान दिए जा रहे हैं कि जैसे वे पाकिस्तान का समर्थन कर रहे हों। भारतीय राजनेताओं के ऐसे बयान निसंदेह आतंकी बनाने के लिए भारतीय युवकों को प्रेरित करते हैं। सरकार द्वारा उनके खिलाफ़ न केवल कार्रवाई की जा रही है बल्कि उनको मोटी रकम देने वालों को भी रोका जा रहा है। इसका ताजा उदाहरण विवादित इस्लामिक उपदेशक नाइक जो आतंकवादी बनने के लिए मुस्लिम युवकों को प्रेरित करता रहा है। उसके खिलाफ अपराधिक मामला दर्ज कर उसके एनजीओ इस्लामिक रिसर्च फाउंडेशन के खिलाफ कार्रवाई प्रारंभ हो गई है। इस संदर्भ में जानना होगा कि जाकिर नाइक के भाषणों पर मलेशिया, ब्रिटेन और कनाडा में प्रतिबंध है। उसके विदेशी फंडिंग की जाँच की जा रही है। उसके बारह ठिकानों पर छापे मारे गए हैं। इसी प्रकार पुराने पाँच सौ, एक हजार की नोटबंदी से चाहे लोगों को थोड़ी बहुत असुविधा हुई हो, लेकिन उसके अच्छे परिणाम भी सामने आने लगे हैं। करीब 35 हजार का कालाधन बाहर आ चुका है। कश्मीर में सुरक्षा बलों पर होने वाले पथराव पर रोक लगी है। इससे यह जाहिर है कि अलगाववादी या पाकिस्तान एजेंट पाँच-पाँच सौ देकर युवकों को पथराव के लिए प्रेरित करते थे। यहाँ तक कि नक्सली आतंकी भी कह रहे हैं कि नोटबंदी का गरीबों के हित में निर्णय है और वे समाज की मुख्यधारा में शामिल होने का मन बना रहे हैं। इधर जनता के लिए कई कल्याणकारी

योजनाएँ भी लागू हुई हैं। चारों ओर विकास का आलोक दिखाई दे रहा है जो शुभ भविष्य का सूचक है।

• सुप्रिया सिंह
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

शब्द

शब्द मुस्कुराहट जगा देते हैं,
शब्द कड़वाहट भी बढ़ा देते हैं,
दिल जो दिखाई नहीं देता
शब्द उसकी बनावट बता देते हैं।

कुछ शब्द कहे नहीं जाते,
कुछ शब्द सहे नहीं जाते,
शब्दों के तीर से बने घाव
जीवन में भरे नहीं जाते।

शब्द दुख भी बांट देते हैं,
शब्द खाई भी पाट देते हैं,
शब्दों के धारदार खंजर
उलझन की जंजीर काट देते हैं।

शब्द मिठास भी भर देते हैं,
शब्द निराशा भी कर देते हैं,
मन में छिपे तूफान की
भड़ास भी व्यक्त कर देते हैं।

शब्द में शूल-सी कसक भी है,
शब्द में फूल-सी महक भी है,

शब्दों में चिड़ियों की चहक भी है-
शब्द दिल में उठे तूफान भी हैं।

असत्य, अप्रिय, कटु, असभ्य शब्द
इतिहास में हलचल मचा देते हैं
तभी तो
शब्द को जो तोलता है-
तोल के जो मुँह खोलता है-
फिर वो बोलता है मधुर वचन
कानों में रस घोलता है।

• वंदना
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

अन्तर कथा...

किसी ने मुझसे पूछा अंग्रेजी और हिन्दी में क्या अंतर है
मैंने धीरे-से कह दिया दिखावटी और सच्चाई जितना,
फिर उसने बोला दिखावटी और सच्चाई में क्या अंतर है
मैंने मुस्कुरा कर कहा पूजा और आस्था जितना,
उसने फिर पूछा पूजा और आस्था में क्या अंतर है
मैंने कहा गुलाब और कमल जितना,
वो हँसकर बोला गुलाब तो सुंदर है और कमल कीचड़ का प्राणी!
मैंने हँसकर कहा ऐ नादान !
गुलाब खूबसूरत पर, कमल तो ग्मारत की पहचान है
गुलाब खिला हुआ सुंदर है पर कमल अपने बलबूते पर खड़ा है
वह हँसकर चला गया,
मैं मुस्कुरा कर रह गई
कि हम दोनों में क्या अंतर है !!

• अर्चना
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

सोशल मीडिया और डिजिटल इंडिया
—परिचर्चा

आज का युग डिजिटल युग है। इंटरनेट और डिजिटल तकनीक के निरन्तर विकास के कारण आधुनिक समय के नए संचार माध्यमों ने पारम्परिक माध्यमों को हाशिए पर धकेल दिया है। फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप, ब्लॉग, इंस्टाग्राम आदि सोशल मीडिया के न जाने कितने रूप इंटरनेट की मायावी दुनिया में शुमार हो चुके हैं। निजी से लेकर सार्वजनिक तक, समाज से लेकर राजनीति तक इसकी बढ़ती भूमिका और महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसी के समानान्तर देश को डिजिटल रूप से सशक्त बनाने के लिए भारतीय सरकार द्वारा 'डिजिटल इंडिया' अभियान चलाया जा रहा है। इस मुहिम का उद्देश्य कागजी कार्यवाही को घटाने के द्वारा भारतीय नागरिकों को इलेक्ट्रानिक सरकार की सेवा उपलब्ध कराने की है। इसका मकसद लोगों को इंटरनेट से जोड़ना है। ताकि दैनिक जीवन से जुड़ी सुविधाएँ उन्हें ऑनलाइन मिल सके। यह योजना सरकारी एवं प्रशासनिक सेवाओं को आम लोगों तक पहुँचाने के साथ सार्वजनिक जवाबदेही को भी सुनिश्चित करेगी। इसके मुख्य उद्देश्यों में ब्रांडबैंड हाइवेज, सर्वसुलभ मोबाइल कनेक्टिविटी, पब्लिक इंटरनेट एक्सेस प्रोग्राम, डिजिटल लिटरेसी, मोबाइल बैंकिंग तथा सोशल मीडिया के जरिए सभी तक जानकारी उपलब्ध कराना है। परन्तु प्रश्न यह है कि डिजिटाइजेशन

की राह क्या इतनी आसान है? सोशल मीडिया और 'डिजिटल इंडिया' की इन्हीं विभिन्न चुनौतियों और संभावनाओं पर हमने धागाओं से बातचीत की, जिसमें उनके विभिन्न मत रहें...

• 'देश को तकनीक के साथ सबल बनाओ' - अर्थात् 'डिजिटल इंडिया' का सपना निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक आकार लेता नजर आ रहा है। आज यह एक आधुनिक क्रांति का रूप ले चुका है।

— पूजा सा

• माननीय प्रधानमंत्री द्वारा आरंभ किया गया 'डिजिटल इंडिया' का प्रयास भारत को माडर्न बनाने में अवश्य सहायक है। परन्तु यह तभी कारगर सिद्ध होगा, जब महानगरों के साथ गाँवों और छोटे शहरों तक भी इसका प्रचार-प्रसार कर लोगों को शिक्षित किया जाये।

— छाया कुमारी

• 'डिजिटल इंडिया' को सफल बनाने हेतु हमें इसकी राह की चुनौतियों को अवश्य देखना होगा। क्योंकि हमारे देश में एक हाथ्रिए पर बड़े शहर हैं तो दूसरी ओर गाँव का अनपढ़ व्यक्ति भी। ऐसे में नवीन सेवाओं जैसे पेटीएम, ई-वॉलेट, डेबिट/क्रेडिट कार्ड का इस्तेमाल, नेट बैंकिंग जैसी सेवाओं का इस्तेमाल उस बड़ी जनसंख्या के लिए सरल नहीं है।

— सुधा

• माननीय नरेन्द्र मोदी का 'डिजिटल इंडिया' का स्वप्न धीरे-धीरे साकार होता दिख रहा है। आज हम सब तकनीकी जीवन अपना रहे हैं। सब कुछ हमारे स्मार्ट फोन में है - बैंक भी, बटुआ भी। अब हम कैशलेस हो गए हैं। यही समय की मांग है और हमारी सुविधा भी।

— आँचल पाल

• सोशल मीडिया के विभिन्न साधनों से हम देश-विदेश की जानकारी और ज्ञान प्राप्त कर पा रहे हैं इससे शहर ही नहीं, गाँव-कस्बे सभी की मानसिकता में बदलाव आ रहा है। सोशल मीडिया ने सूचनाओं और विचारों की साझेदारी को एक नया आयाम दिया है। इन माध्यमों की तात्कालिकता, स्वतन्त्र अभिव्यक्ति और बहुपक्षीय संवाद चर्चा ने इसकी भूमिका को विस्तार दिया है। परन्तु इन माध्यमों का विस्तार शहरों तक सीमित न कर ग्रामीण इलाकों तक इसका विस्तार करना चाहिए।

— बरखा

• आज हम शहरों में बैठकर 'डिजिटल इंडिया' की बात कर रहे हैं। पेटीएम तथा विभिन्न एप्स का इस्तेमाल कर हम माडर्न बन रहे हैं। परन्तु 'डिजिटल इंडिया' के लिए हमें माँओं की उस आबादी की ओर भी ध्यान देना होगा, जिनके पास पानी, बिजली, शौचालय जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ भी नहीं पहुँच पायी हैं। ऐसे में डिजिटाइजेशन केवल अधूरा स्वप्न ही न रह जाय...

— अतीहा

• प्रायः तकनीकी और साहित्य को विरोधी मान लिया जाता है या यूँ कहें कि साहित्य व्यक्ति और समाज के सह-संबंधों के लिए रूढ़ है। परन्तु डिजिटाइजेशन ने इस सहसम्बन्ध को अधिक व्यापक बनाया है। इस तकनीकी दुनिया में व्हाट्स-एप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ब्लॉग, ट्विटर इत्यादि के द्वारा हम जानकारियों के साथ जुड़े रहते हैं और नवीन जानकारी के साथ स्वयं को 'स्मार्ट' पाते हैं। परन्तु जहाँ इंटरनेट ने व्यक्ति और समाज को नए आयाम दिए हैं वहीं 'सोशल' होने की अवधारणा पर भी प्रश्नचिह्न लगाया है।

— निम्मा

• 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम भारत को डिजिटल सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था में बदलने के लिए किया गया सराहनीय कदम है। यह भारतीय लोगों के लिए एक जनोपयोगी सेवा की तरह पूरे देश में तेज गति से इंटरनेट पहुँच उपलब्ध कराएगा, जिससे सभी सरकारी सेवाओं का तीव्र और सरल लाभ ले सकें। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों को इंटरनेट से जोड़ना है ताकि दैनिक जीवन से जुड़ी सुविधाएँ उन्हें ऑनलाइन मिल सके।

— पल्लवी राय

• आज के समय में डिजिटल तकनीक को अपनाए बिना हमारा विकास अधूरा है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 'डिजिटल इंडिया' प्रोजेक्ट के तहत भारत को सशक्त बनाने की बात कही है। देश भर में

डिजिटल संरचना का निर्माण, डिजिटल साक्षरता, डिजिटल तरीके से सेवा प्रदान करना इसके महत्वपूर्ण तत्व हैं।

— शेफाली गुप्ता

सच है, हमारे देश में आज भी 90 करोड़ लोगों की पहुँच इन्टरनेट तक नहीं है और 37 फीसद लोग अशिक्षित हैं। ऐसे में 'डिजिटल भारत' का स्वप्न साकार करने के लिए डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम चलाए जाने की अति आवश्यकता है। शहर और गाँव की खाई को पाटना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। ई-सुविधाएँ सारी समस्याओं का समाधान नहीं है, और नेटवर्क की समस्या तो अपनी जगह है ही। ऐसे में सरकार के सम्मुख इस लक्ष्य में अनेक चुनौतियाँ हैं - जिन्हें उससे पार पाना है।

जा पर प्रेम न संचरे...

—पुस्तक समीक्षा

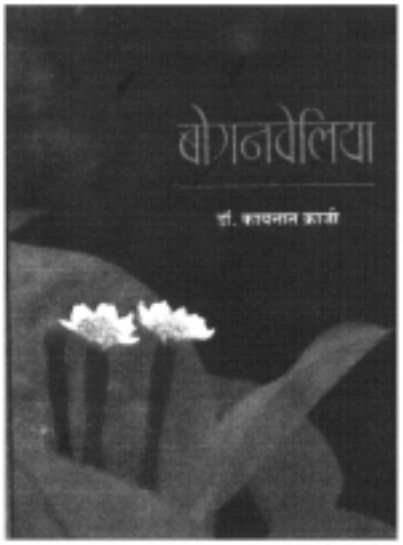

डॉ. कायनात क़ाज़ी एक फोटोग्राफर, ट्रैवल राइटर और ब्लॉगर होने के साथ-साथ एक प्रतिष्ठित कहानी-कार भी है। खुद को वह 'सोलो फीमेल ट्रैवलर' के रूप में इंट्रोड्यूस करती है। यायावरी उनका जुनून है- तो फोटोग्राफी शौक। कहानीकार कायनात ने 'कृष्णा सोबती का साहित्य और समाज' तथा 'बोगनवेलिया' कहानी संग्रह की रचना की है। किस्सागोई का शौक उन्हें बचपन से ही था, जो उन्हें अपने दादा से विरासत से मिला। इसी शौक ने आगे चलकर उन्हें कहानीकार के रूप में पहचान दिलायी। कायनात जी 'राहगीरी' नाम से हिंदी का पहला ट्रैवल फोटोग्राफी ब्लॉग भी चलाती है।

'बोगनवेलिया' उनका पहला कहानी संग्रह है जिसमें प्रेम को एक व्यक्ति तक सीमित न रख उसका दायरा विस्तृत दर्शाया गया है। इसमें प्रेम के अलग-अलग रंग है, और ये कहानियाँ एक व्यक्ति से गुजरकर समाज तक पहुँचती हैं। व्यक्ति की आन्तरिक छटपटाहट, उसका अन्तर्द्वन्द्व, पारिवारिक संबंध, व्यक्ति के माध्यम से समाज की मानसिकता तथा प्रेम के विविध रूप इन कहानियों में देखने को मिलते है। अपने कहानी संग्रह के

के बारे में स्वयं लेखिका का कहना है- " बोगनवेलिया प्रेम की कहानियों का एक गुलदस्ता है। मेरी इन कहानियों में आपको प्रेम के अलग-अलग रंग देखने को मिलेंगे। हर कहानी एक-दूसरे से अलग है और प्रेम को एक नए रूप में परिभाषित करती है। प्रेम केवल किसी को पा लेना भर नहीं होता। प्रेम तो त्याग है... "। संग्रह की कहानी 'अरविन्द की सुधा' में अरविन्द का प्रेम अरविन्द के चले जाने के बाद भी सुधा का सहारा बनता है। उसको जीवन जीने की उम्मीद देता है जिसके सहारे वह अपनी जिंदगी उस प्यार के अहसास भर से गुजार देने को तैयार है। अरविन्द के दिल की धड़कन महज एक बार वह सुन लेना चाहती है। यह प्रेम वासना रहित है। कहानी के अंत में सुधा पत्र में लिखती भी है- " आपने जो मेरे लिए किया है, उसका ऋण मैं कभी नहीं चुका पाऊंगी। आपको अरविन्द के हृदय ने नया जीवन दिया है, और आपने मुझे अपनी बाकी जिंदगी अरविन्द के बिना जीने की हिम्मत दी है। " तो इनकी अन्य कहानी 'अनुराग' में प्रेम का एक नया रूप हमारे सामने आता है। कहानी के आरंभ से लेकर अन्त तक पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है कि आखिर सुकन्या किसके प्रेम में खोई हुई है। किससे मिलने के लिए निरन्तर बेचैन भी है। अपने जीवन के अंतिम क्षण में भी वह केवल एक बार अपने उस प्रेमी को मिलना चाहती है। कहानी का पाठक ही नहीं बल्कि कहानी का पात्र डॉक्टर भी यही सोचता है कि 'अनुराग' उसका प्रेमी है। किन्तु कहानी

के अन्त में पाठकों को आश्चर्य होता है 'अनुराग' उसका मुँहबोला बेटा है, जो केवल 4-5 साल का ही है। जिसको जीवन के अंतिम क्षण में देखकर सुकन्या अपने प्राण हँसते-हँसते त्याग देती है। - " मैं पागल हूँ... उसके प्रेम में पागल हूँ, अब इसे देखने के बाद मुझे जीवन से कुछ नहीं चाहिए... ' सुकन्या के ये शब्द प्रेम की एक नयी परिभाषा हमारे सम्मुख रखते हैं। कहानी के अंत में जॉक्टर प्रेम के बारे में समाज की संकीर्ण सोच तथा सुकन्या के प्रेम की महानता को स्पष्ट करते है। ' एक थी रूमाना ' कहानी में हेनरी और रूमाना की अद्भुत प्रेम कहानी का वर्णन है। यह कहानी आधुनिक समाज की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालती है। एक ओर यह धर्म, जाति नस्ल के बंधनों को तोड़ती कहानी है तो दूसरी ओर भौतिक संसाधनों को जुटाते उस व्यक्ति की कहानी है जो लालचवश अपने प्रेम की आहुति दे देता है। इसका अहसास होने पर अपनी भूल स्वीकार कर वह पश्चाताप भी करता है। - " मुझे इस दुनिया से नफरत हो गई है जिसमें खोकर मैं अपनी रूमाना को भूल गया था.... ' । इस प्रेम में त्याग है, संतोष है। संग्रह की शीर्षक कहानी ' बोगनवेलिया ' अकेलेपन की कहानी है। यह बेचारगी नहीं है, यह स्वाभिमान से जीने की फैंटेसी है। वस्तुतः किसी से प्यार करना या प्यार में होना दुनिया का सबसे खूबसूरत अहसास है। प्रेम में जिस समर्पण, विश्वास और वचनबद्धता की दरकार होती है

वह कहानी 'तुम्हारे लिए' में दिखती है। स्वार्थ की सीमाओं से परे कहानी की नायिका अपने प्रेमी मित्र का दिल नहीं तोड़ना चाहती। वह उससे प्रेम नहीं करती, उसका प्रेमी तो उसके अच्छे मित्रों की सूची में भी शामिल नहीं, पर फिर भी वह उसका ध्यान रखती है कि उसकी भावनाओं को ठेस न पहुँचे, वह टूटकर बिखर न जाये। अनजाने आकर्षण में कैद वह उसके समीप आती चली जाती है। क्योंकि सच्चा प्रेम अधिकार नहीं जताता बल्कि अपने प्रेमी का 'मान' रखता है। प्रेम अपने अहं का त्याग कर एक-दूसरे के सम्मान की रक्षा भी है। लेखिका बतलाती है- प्रेम तमाम संकीर्णताओं तथा कट्टरताओं के खिलाफ है। उसमें उदारता एवं उदात्तता जरूरी है। इस तरह ये कहानियाँ हमारे आस-पास की हैं, इन्हें पढ़-कर शायद इन किरदारों में हम खुद को ढूँढने लगते हैं। कहानियों की भाषा अत्यन्त सरल, स्पष्ट और मानवीय भावों को उजागर करने में पूरी तरह सक्षम है।

• अंजलि दहिया
(एम.ए हिंदी)

यायावरी के बहाने...

— पुस्तक समीक्षा

यह अज्ञेय द्वारा लिखा एक यात्रा विवरण संग्रह है जिसमें उनकी यूरोप यात्रा का वर्णन है। इसमें उन्होंने वहाँ की जीवन शैली दर्शन, काव्य और इतिहास के बारे में चर्चा की है यह 'अरे यायावर रहेगा याद' के बाद दूसरा यात्रा वृत्तांत है। वह यूनेस्को द्वारा प्रायोजित यात्रा में यूरोप गए थे और इस यात्रा को सार्थक बनाते हुए इन्होंने इटली, स्विटजरलैंड, फ्रांस, नीयरलैंड, इंग्लैण्ड, स्काटलैंड, स्वीडन आदि देशों की अपनी यात्रा के बारे में लिखा है।

'एक बूंद सहसा उछली' अज्ञेय जी का बड़ा ही दिलचस्प यात्रा वृतान्त है। और यह दिलचस्पी तब और भी बढ़ जाती है जब हम लेखक द्वारा उठाये गये मुद्दों को उस दृष्टि से देखे जिसके होने की दरकार वह करता है। अज्ञेय चाहते हैं कि उनका पाठक संवेदन शील उदारमना व अनुभव के प्रति खुला हो। संवेदनशील इसलिए क्योंकि बिना संवेदनशीलता के वह उसे ग्रहण नहीं कर सकता जो मेरी संवेदना ने ग्रहण किया है। उदारमना इसलिए कि अगर वह अनुदार है तो दूसरे के विचारो का सम्मान नहीं कर सकता और शायद अपने विचार भी नहीं रख सकता। क्योंकि अनुदार विचार तो अपनी उपलब्धि नहीं बल्कि रूढ़ि का साधन होते है। पाठक यदि अनुभव के प्रति खुला नहीं है तो उसे दूसरे के अनुभव से क्या प्रयोजन हो सकता है।

'अज्ञेय' रचित यह पुस्तक एक मनोरंजन या एक केवलमार्गदर्शिका है— यह कहना निरी मूर्खता होगी। यात्रा वृतान्त को लेकर सामान्य लोगों की सोच से आगे है यह पुस्तक। यह पुस्तक बड़े ही साहित्यिक ढंग से लिखी गई, ऐसा इसलिए नहीं कि लेखक के पास लिखने को कुछ नहीं था, पर वह अनावश्यक प्रलाप आवश्यक नहीं समझते थे। इस रचना में उन्होंने जो अंकित किया है उसका दृष्टिकोण अलग है। अज्ञेय का यूरोप जाना महज एक यात्रा न होकर उनकी तमाम जिज्ञासाओं

की शांति का एक द्वार है। अज्ञेय यूरोप जाये पर पूरी तैयारी के साथ जैसे वहाँ के चिन्तकों के बारे में अध्ययन कर, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक तथ्यों के बारे में अध्ययन कर आदि। जाहिर है अज्ञेय का उद्देश्य बड़ा होगा, जिसका परिचय पुस्तक पढ़ने के साथ-साथ हमें होता है।

यूरोप में पहुँचकर जो जीवन शैली लेखक ने देखी उससे वह गहराई तक प्रभावित हुए। लेखक ने भारतीय, यूरोपीय और चीनी जीवन शैली की तुलना करते हुए उनके दर्शन शास्त्र के मूल में जाने की कोशिश की है। यूरोप में व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता पर बल दिया जाता है लेकिन उसका रूप पूरे यूरोप में एक जैसा हो ऐसा नहीं है। फ्रांस में प्रत्येक व्यक्ति किसी दूसरे के जीवन में दखल नहीं देता लेकिन लेखक को इसका कारण एक-दूसरे की परवाह न होना लगा। वहीं स्वीडन आदि देशों में निजी स्वतंत्रता दूसरे व्यक्ति की सोच और कार्यों का सम्मान होना लगा। यूरोप में जीवन की इकाई व्यक्ति होता है और भारत में यही इकाई समाज होता है। समाज से इतर व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है।

अज्ञेय न सिर्फ भारतीय और यूरोपीय संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं बल्कि वे अन्य विषयों पर भी प्रकाश डालते हैं जैसे: आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक आदि आदि। जहाँ एक ओर वे यूरोपवासियों में ऐतिहासिक धरोहरों के प्रति लगाव को व्यक्त करते हैं वहीं दूसरी ओर औद्योगीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न अस्तित्ववाद पर गहन विचार प्रस्तुत करते हैं। अज्ञेय जी कहते हैं कि मशीन सब कुछ उघाड़ती-चलती है, उसमें आत्मा नहीं होती। लेकिन मशीन का दास होकर मनुष्य भी सब कुछ उघाड़ता जा रहा है। आत्मा उसके पास नहीं है यह मानना कठिन है लेकिन वह अनाहत है यह कहना तो सरासर झूठ होगा। इसी प्रकार भाषा की जागरूकता और उसके व्याकरण का ज्ञान एक गाईड द्वारा सुनकर अज्ञेय आश्चर्य व्यक्त करते हैं। अज्ञेय मानते हैं कि विविध भाषाओं का ज्ञान होना बड़ी बात नहीं, बड़ी बात यह है कि किसी भाषा पर ऐसा अधिकार होना चाहिए जो सृष्टि का साधन बन सके। इस प्रकार अज्ञेय यूरोप में विचरण करते हुए तमाम चीजों के

बारे विचार रखते हैं जिसका अपना बौद्धिक, दार्शनिक व वैज्ञानिक पक्ष है। कभी वे यूरोप के आम रहन-सहन के बारे में बात करते हैं तो कभी भू मध्य रेखा से दूरी के आधार पर यूरोपीय देशो में पाये जाने वाले बहुरंगी वस्त्रों की चर्चा करते हैं।

अर्थात यह यात्रा वृतान्त एक विस्तृत जानकारी का स्रोत है। उनकी समझ जो अन्तर स्पष्ट करती है, वह एकपक्षीय नहीं है। अज्ञेय ने अपनी तर्कशीलता के सहारे न सिर्फ 'एक बूंद सहसा उछली' को सँवारा बल्कि यात्रा वृतान्त लिखने वाले साहित्यकारों के लिए नए मूल्य भी स्थापित किये।

• राघवेन्द्र त्रिपाठी
(एम.ए. हिंदी)

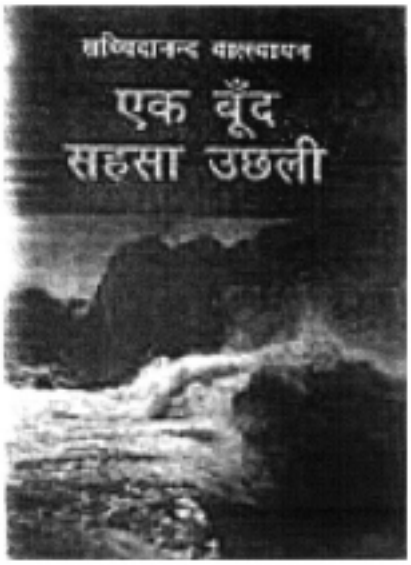

ये दिल्ली है मेरी जान - मेरी नज़र से

एक पर्यटक की हैसियत से मैं पहले भी दिल्ली घूम चुकी थी लेकिन कक्षा बारहवीं के बाद राजधानी में रहकर पढ़ाई करने का मेरा पहला अनुभव है। बाहर से आने वालों के लिए दिल्ली आगे बढ़ने के असंख्य अवसर प्रदान करती है, फिर चाहे वह कोई अध्ययन कर्ता हो या नौकरी पेशा व्यक्ति। छोटे शहरों में रहने वालों के लिए दिल्ली कई मामलों में एक नया अनुभव देती है। मसलन, दिल्ली मेट्रो या फ्लाईओवर। यहाँ पर सस्ती से सस्ती और मंहगी से मंहगी वस्तुएँ मिल सकती हैं बशर्ते आपको पता होना चाहिए कि कहाँ क्या मिलेगा।

भारत सरकार के सभी मंत्रालय और मुख्यालय यहीं होने के कारण स्वाभाविक है कि दिल्ली के ये चमचमाते सरकारी दफ्तर नवयुवकों को प्रशासनिक सेवा की ओर रिझाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। कठिन परिक्षाओं को पास करवाने का ठेका लेने वाले कोचिंग संस्थानो का तो यहाँ अंबार लगा हुआ है। न जाने कितने ही युवा अपनी किस्मत आजमाने और सपनों की उड़ाने भरकर यहाँ पधारते हैं। इन महँगे ठेकेदारो के यहाँ कोचिंग लेकर कौन अधिकारी बनेगा और कौन नहीं यह तो युवाओं का परिश्रम व उनका भगवान ही जानता है, परन्तु यहाँ के प्रदूषण में उनका जीवन दूभर होना स्वाभाविक है। मैं एक घटना का जिक्र करके बताती हूँ कि मुखर्जी नगर जैसे तंग इलाके के चप्पे चप्पे में सिविल सेवा के अभ्यर्थी बसे हैं और स्थिति यह है कि न उन्हें साफ पीने का पानी मुफ्त मिल पाता है और न सही खुराक का भोजन। और जो तबका उच्च वर्ग यानि आर्थिक रूप से सक्षम है वे भी कई गुना पैसा खर्च

करके ये सभी सुविधाएँ ढंग से प्राप्त नहीं कर पाते।

जहाँ तक दिल्ली की आम जनता का सवाल है, यह मानना पड़ेगा कि किसी भी दूसरे शहर की तुलना में दिल्ली की जनता सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों पर अधिक सजग दिखती है। भ्रष्टाचार के मसले पर आंदोलन से लेकर निर्भया बलात्कार के मामले पर जो जनाक्रोश उभरा था और दिल्ली की जनता जिस प्रकार सड़कों पर आकर न्याय के लिए सक्रिय दिखी थी, वैसा कम ही देखने को मिलता है।

दिसम्बर 2012 की है जब मुझे नेशनल मेरिट अवार्ड के लिए मध्यप्रदेश राज्य से चुना गया था और वहीं समय मेरे लिए दिल्ली घूमने के योग्य बना और मैंने अनुभव किया कि जब सड़को पर किसी वी आईपी, नेता या विदेशी मेहमान के गुजरने के वक्त रास्ते बंद कर दिये जाते थे, तो ऐसे नजारे एक लोकतांत्रिक देश में मुझे सामंतवाद का आभास कराते थे। कभी-कभी सोचती हूँ कि भ्रष्टाचार पर आक्रोशित लोग पता नहीं कब इस वी आईपी संस्कृति के खिलाफ एकजुटता दिखायेंगे।

यहाँ एक तरफ ठसाठस भरी हुई डी टी सी की बसें और दिल्ली मेट्रो होती हैं, जहां खड़े होने के लिए भी लोगों को संघर्ष करना पड़ता है, तो दूसरी तरफ सड़को पर दौड़ रही अधिकतर कारों में एक ही व्यक्ति बैठा होता है। शायद कार-पूलिंग या एक कार में आसपास के कुछ और लोगों के साथ सफर करना दिल्ली वालों की शान के खिलाफ है।

जब दिल्ली की बात हो ही रही है तो दिल्ली विश्वविद्यालय को कैसे छोड़ा जा सकता है। दिल्ली विश्वविद्यालय मतलब जिसका नाम सुनते ही सबसे पहले ९१% का कट-ऑफ आँखो के सामने आता है। और जब यहाँ के लढ़िया कॉलेज में प्रवेश मिल जाये तो फिर क्या कहने! कई उपलब्धियों को संजोए डी यू के महाविद्यालय युवाओं को निखारने में कोई कसर

नहीं छोड़ते वहीं मुझे एक कमी यहाँ हमेशा महसूस हुई है और वह है हिन्दी माध्यम में मनोविज्ञान, विज्ञान के विषय, समाज शास्त्र इत्यादि के अध्ययन का नदारद होना। कई प्रतिभाशाली बच्चे जो स्टेट बोर्ड या हिन्दी माध्यम में अपनी पूरी पढ़ाई करने के इच्छुक हो वे केवल परीक्षाएँ ही हिन्दी माध्यम में दे सकते हैं। विभाग में हिन्दी जानने वालों शिक्षकों की कमी यहाँ हमेशा खलती है। खैर आशा है यह काम भी पूरा हो ही जाएगा।

एक बात जिसने मुझे सबसे ज्यादा निराश किया वह था दिल्ली के लोगों की हर बात का गालियों से शुरू होकर गालियों पर खत्म होना और महिलाओं या लड़कियों के प्रति दृष्टिकोण। हांलाकि भोपाल में दो वर्ष रहने के कारण आम बोलचाल में गालियों का प्रयोग करते लोगों को देखना मेरे लिए नई बात नहीं थी, लेकिन दिल्ली वाले इस मामले में भोपाल से भी दो कदम आगे निकले। उनको पता ही नहीं चलता कि किस बात के साथ वे कैसे माँ-बहन की गाली दे रहे हैं। आखिर आपसी बातों में माँ बहन की बेइज्जती क्यों करना?

इसके अलावा देश की राजधानी में रहने के बावजूद लोग यह मानने को तैयार नहीं हैं कि लड़का व लड़की एक समान हैं। कुछ हद तक दिल्ली में लड़कियों के खिलाफ बढ़ते हुए अपराधों, खासतौर पर बलात्कार के पीछे अचेतन में स्थापित यही पिछड़ी मानसिकता जिम्मेदार है।

बहरहाल, दिल्ली में सभी अच्छी-बुरी बातों के बावजूद यह मानना पड़ेगा कि मैंने दिल्ली आकर कुछ बाते अच्छे दोस्त बनाए हैं और बहुत कुछ नया सीखा है। यहाँ आकर मैं अधिक परिपक्व, आत्मविश्वासी और मजबूत इंसान बनी हूँ। अभी आगे और कोशिश जारी है।

• पूनम चौरे
(समाजशास्त्र विशेष
द्वितीय वर्ष)

बारिश की सौंधी गंध
– मेरी नज़र से

जब गर्मी से मानव और धरती झुलस रही होती है तब धरती की तपन बुझाने और जन-मन को शीतल करने के लिए वर्षा ऋतु आती है।

हिन्दू कैलेण्डर के हिसाब से मानसून का मौसम वर्षा ऋतु कहलाता है – भारत में इस समय बारिश होती है। यह सावन और भाद्रपक्ष का माह होता है। इसका आगमन प्रचंड गर्मी के बाद जुलाई महीने में होता है और सितम्बर तक चलता है। भारत में चार मुख्य ऋतुओं में वर्षा ऋतु एक है। वर्षा ऋतु हम सभी के लिए प्यारा मौसम होता है। ये धरती पर मौजूद हर जीव-जंतु के लिए एक उम्मीद और जीवन लेकर आता है जो सूरज की ताप की वजह से खत्म हो जाता है। यह अपने प्राकृतिक और ठंडे बारिश के पानी की वजह से लोगों को बहुत राहत देता है। भीषण गर्मी के कारण जो नदी और तालाब सूख जाते वे फिर से बारिश के पानी से भर जाते हैं। इससे जलचरों को नया जीवन मिल जाता है। बरसात उद्यानों और मैदानों को उनकी हरियाली वापस देती है। वर्षा

हमारे पर्यावरण को एक नयी सुंदरता प्रदान करती है। इस मौसम में हम पके हुए आम का लुफ्त उठाते हैं। पूरा वातावरण हरा-भरा हो जाता है, जो आँखों को सुकून पहुँचाता है। मुझे लगता है कि जिस तरह से मुझे वर्षा ऋतु बहुत पसंद है, उसी तरह दूसरों को भी यह मौसम खूब भाता होगा। यह मुझे काफी खुशी और राहत देता है। आखिरकार यह लंबी गर्मी के बाद जो आता है। हमारे किसान भाई इस मौसम के लिए फसलों की तंदुरुस्ती के लिए वर्षा के देवता भगवान इन्द्र से प्रार्थना करते हैं। वर्षा ऋतु इस धरती पर पेड़-पौधे इंसान और जानवरों के लिए नया जीवन लेकर आती है। ऐसा ही मेरा भी बरसात को लेकर एक छोटा-सा अनुभव है, जो मैं आपके साथ मिलकर साझा करना चाहती हूँ। आज सुबह जब मेरी आँख खुली बाहर देखा, जैसे काले बादलों ने पूरे आसमान को ही ढक लिया हो। सुबह के इस खुशनुमा सुहाने मौसम को देखकर आज मन बड़ी शंका में था। कॉलेज जाऊँ या नहीं? समझ नहीं आ रहा था, फिर सोचा आज ठंडा मौसम है और सुहाना भी, चली ही जाती हूँ। बिना देरी किए मैं जल्दी-जल्दी तैयार होने लगी। कॉलेज जाने की जल्दी-बाजी में मैं तैयार होकर अपना लंच और पुस्तकें रखने लगी। माँ हमेशा की तरह आज भी मौसम को देखते हुए छाता साथ रखने को कह रही थी। और मैं अब भी बॉलकनी से बाहर झाँककर उस सुहावने मौसम का आनंद लेकर प्रकृति की उस प्रसन्नता को निहार रही थी। मैं जल्दी से बैग उठाकर कॉलेज के लिए निकल पड़ी।

बाहर ठंडी-ठंडी हवाएँ बह रही थी और साथ ही हल्की-हल्की फुहार भी शुरू हो गयी थी। बादल गहरे हो रहे थे। ऐसा लगता था जैसे किसी ने आसमान में स्याही मल दी हो। तभी अचानक, माँ की छाते वाली बात याद आयी, और साथ ही एक गुदगुदाहट वाली हँसी भी। मैं आज फिर से छाता घर पर भूल आयी थी। आज बस का दृश्य भी काफी सुखद नहीं था। सब जैसे अभी-अभी नहा कर आए हों। बाहर बारिश अब तेज हो चुकी थी और मौसम काफी ठंडा हो गया था। मैं पूरी तरह भीग चुकी थी और सड़क के किनारे-किनारे चलकर कॉलेज तक जाने लगी। बारिश में भीगने के कारण मुझे ठंड लगने लगी थी। ठंड के मारे दाँत भी बजने लगे थे। जल्दी से कॉलेज पहुँचकर मैंने स्वयं को सुरक्षित पाया और राहत की साँस ली। बारिश अब लगभग रुक गयी थी। मौसम अब और भी सुहावना लग रहा था। पेड़ों के हरे-हरे पत्तों पर पड़ी बारिश की बूँदें सफेद मोती की तरह चमक रही थी। इस प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस समय शरीर की सारी ठंडक मानो आँखों में उतर आयी थी। कितना अद्भुत दृश्य था वो। मुझे सकाश्क कवि निराला की ये पंक्तियाँ स्मरण हो आयी।

आलि घिर आए घन पावस के
लख ये काले-काले बादल
नील सिंधु में खिले कमल दल
हरित ज्योति चपला अति चंचल
सौरभ के रस के

हरियाली ने आलि हर ली थी
अखिल विश्व के नवयौवन की
मंद गंध कुसुमों में लिख दी
लिपि जय की हंस के ।

पर इस बारिश के कारण आज भी कितने ही ऐसे मासूम आम-जन हैं। जिनके घरों में बरसात के कारण जहाँ-तहाँ कटोरे रखे मिलते हैं। जिनके पास बारिश में भीगने के पश्चात एक जोड़ी वस्त्र भी नहीं होते। वे किस प्रकार अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए, अपना जीवन यापन करते हैं।

भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में आज भी कितने ही घर ऐसे हैं, जिनके पास बारिश में सिर छुपाने की जगह नहीं है। वे बेचारे मजबूर हैं, इस बरसात में भीगने को। इस बरसात में किसी तरह वे किसी फ्लाईओवर या रेलवे स्टेशन या बस शेल्टर के नीचे खड़े होकर खुद को खुशनसीब समझते हैं। उनकी जिंदगी में कहाँ वो आनंद है, कहाँ वो खुशी है। हम अपने लिए वो प्रबंध कर लेते हैं, लेकिन एक वह वर्ग जो दूसरों पर आश्रित है। इन बरसात के दिनों में उनकी स्थिति का अंदाजा भी हम नहीं लगा सकते। हमारे समान ही उनका जीवन है, लेकिन हम उन्हें भूल जाते हैं। और हम केवल अपनी समस्याओं तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। उनका जीवन भी तो है। वे इस वर्षा में कितने ही कष्टों का सामना करते हैं। उनके मुख पर वो खुशी नहीं होती, बल्कि वे एक

वैषम्य भरा जीवन व्यतीत करते हैं।

बारिश के कारण आज बाहर रिक्शा उदास खड़ा है। घर में तवे का भी यही हाल है। मीना सोच रही है कि बारिश थम जाए तो कुछ खाना पके। पप्पू बालकनी में खड़े होकर खुश हो रहा है.... ट्यूशन से छुट्टी....। हे भगवान ये बारिश ऐसे ही होती रहे। मेरा मन चाय के साथ माँ के हाथ के बने पकौड़े खाने को ललचा रहा है। तो नन्हीं पिंकी कागज की नाव खड़े पानी में तैराने को उतावली हो रही है।

सच! हर बारिश की अपनी अलग कहानी है। दोस्तों, सच ही है - बारिश भी अजीब ही है, जो किसी के चेहरे पर मुस्कान लाती है तो किसी के चेहरे पर शिकन।

• आंचल पाल
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

मेरा अनमनापन
— मेरी नज़र से

बहुत दिन हुए कि कुछ लिखा ही नहीं। साल में कुल 12 महीने ही तो होते हैं और पता नहीं क्यों आज ऐसा लग रहा है पूरे साल कुछ भी तो नहीं किया। मुझे लिखना पसंद है। सबसे मैं झट तो कहती हूँ मगर पिछले एक साल से मुझे याद नहीं मैंने कुछ भी लिखा हो। इस एक साल में सीखने के नाम पर बस पेपरों में ही तो शीट भरी है। सच कहूँ तो ये सब मेरा विषय नहीं है। वास्तव में मैं तो एक आम लड़की ही हूँ जो आप सबकी तरह ही दिनभर किसी न किसी काम में व्यस्त रहती हूँ। और इसके चलते जो मन का विषय है वह पीछे ही छूट जाता है। आज मैं, आप, बल्कि हम सब न जाने कैसी-कैसी समस्याओं से घिरे हैं। मैं अगर अपनी ही बात करूँ तो मुझे ऐसा महसूस हो रहा है कि मैं पिछले एक साल से पेपर ही दिए जा रही हूँ। हालाँकि ये सच नहीं है। औपचारिक रूप से साल में बस दो ही सेमेस्टर में पेपर होते हैं। परंतु पता नहीं फिर भी क्यों आजकल दिमाग बड़ा खिंचाव सा महसूस करता है। सच तो यह है कि ये सिलसिला पिछले चार महीने से चल रहा है। मेरी पूरी दिनचर्या सबकी नजरों में सामान्य होती है परंतु मैं जानती हूँ कि मुझे ठीक महसूस नहीं हो रहा। हर रोज ऐसा महसूस होता है जैसे दिमाग बंद है, आँखें खुली हैं— एकाएक एक ओर देखती हैं। मैं जैसी पहले थी अब वैसी नहीं रही। ये बात मुझे अंदर ही अंदर कौंध रही है। अपने आपको बहुत ज्यादा थका हुआ महसूस कर रही हूँ। सोने का

भी मन नहीं करता। पता नहीं क्यों ऐसा लग रहा है कि मेरी ज़मीन, मेरा टिका हुआ शाँत मन, मेरे सपने एक-एक कर सबकुछ दूर जा रहा है। चारों तरफ उदासी, एक गहरी उदासी छाई है। या शायद मेरे अँदर ही किसी गहरी उदासी ने जगह बना ली है। मैं चल रही हूँ जैसे घड़ी की सुईयाँ। मुझे नहीं पता क्या करना है, कैसे, बस सबकुछ अपने आप होता चला जा रहा है। मन शाँति में जाने को बेताब है पर अकेलापन और शाँति एक अजीब सी घबराहट मेरे अँदर पैदा करती है। जैसे मैं किसी से भाग रही हूँ पर सच मुझे नहीं पता किससे, किस चीज़ से। ऐसा नहीं है कि मैं हँसती नहीं हूँ ऐसा भी नहीं कि मैं बातें नहीं करती। लेकिन कुछ है जो मुझे सबसे दूर ले जाने को उतारू है।

बीच में एक बार डॉ० से भी कन्सल्ट कर लिया है, उनका ये ही कहना है कि यदि किसी चीज़ की चिंता है तो उसे अपने ऊपर हावी मन होने दो। लेकिन सच तो यह है कि मैंने पिछले चार माह से किसी विषय पर विचार ही नहीं किया तो चिंता कहाँ से आएगी।

कुछ अजीब बहुत अजीब-सा महसूस कर रही हूँ। चुप रहने का मन है एक युद्ध में थके, हारे, घायल सिपाही की भाँति। न जाने जिंदगी की ऐसी कौन सी रेस में मैंने खुद को खड़ा कर दिया है जहाँ मैं सिर्फ एक मशीन भर बन कर रह गई हूँ। थक गई हूँ इस तरह भागते हुए। जी सुस्ताने को कर रहा है। रोकर

दिल हल्का करना चाहती हूँ पर रोने की वजह भी मालूम नहीं होती। शायद हम सब या सिर्फ मैं ही इस तरह से अनमनी हो गई हूँ।

विषम गहन चिंतन का है कि मैं मेज्योरटी में शामिल हो गई हूँ। ये मेज्योरिटी और कुछ नहीं अपितु विश्वभर के 17% मांसिक रोगियों की है। पिछले ही हफ्ते पढ़ रही थी कि विश्व के लगभग 17% व्यक्ति मांसिक पीड़ा से ग्रस्त हैं। पहचान के कुछ लक्षण भी थे जो मेरे अंदर सारे मौजूद हैं। लिखा था विश्व के 17% लोगों में उपरोक्त लक्षण साल में या महीने में या हफ्ते में एक या अनेकों बार देखने को मिलते हैं। इसकी वजह वह तो और भी अधिक रोचक थी — आधुनिकता की देन हमारी भाग-दौड़ भरी मशीनी जिंदगी। इन सबके साथ कुछ निदान व बचाव हेतु कुछेक उपाय भी मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे थे— खुश रहो, आत्मचिंतन करो, ध्यान करो, चिंता कम कर आज में जियो इत्यादि...।

लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर हम अपने साथ कर क्या रहे हैं, ऐसा क्या पाना चाहते हैं और जो पाना चाहते हैं उसके मिलने के बाद क्या हम इस केटेगरी से बाहर हो जाते हैं। इस प्रश्न का उत्तर आप सब बखूबी जानते हैं कि एक बार हम जिस चीज के पीछे भाग रहे हैं वह मिल जाए तो यह स्थिति, यह बेचैनी, ये महत्वकांक्षाएँ और भी बढ़ जाती हैं। वास्तविकता में आज हम चीजों को पाने की होड़ में लगे हैं परंतु सच तो यह है कि व्यक्ति

यदि एक बार धैर्य के साथ स्वयं को जान ले, स्वयं को हासिल कर ले, तो ये वस्तुएँ ~~व्यक्ति~~ व्यक्ति कोई महत्व का विषय नहीं रहते। ये वस्तुएँ हमें वैसे ही हासिल हो जाती है जैसे बारिश में खड़े होने पर बारिश की बूँदे व्यक्ति पर पड़ने लगती हैं और अन्ततः वह भीग कर ही रहता है। ये सभी वस्तुएँ भी उसी भाँति हैं। हमें स्वयं को स्थिर और संयमित रखना चाहिए। स्वयं मेरा भी ये प्रयास रहे कि हमारा लक्ष्य हमारा स्वयं का स्थिर मन होना चाहिए न कि ये वस्तुएँ की इच्छा। यदि हम दिन भर की बातों का एक बार चिंतन करें तो ज्ञात होगा कि हम पूरे दिन में सिर्फ खाना खाते समय अपने विषय में सोचते हैं। बाकी समय हम दूसरों के लिए दुनिया के लिए खुद को तैयार करने में बिता देते हैं। पूरे दिन में एक बार भी हम क्या हैं, क्यों हैं इस विषय पर विचार ही नहीं करते। परिणामस्वरूप ये मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। जब हम मन से स्वस्थ हैं तो हमारे स्वस्थ मन का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर सकारात्मक ~~रूप~~ में पड़ता है। सच है स्वस्थ मस्तिष्क ही एक स्वस्थ समाज व देश का निर्माण कर सकता है।

• अतीक्षा
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

— 5 मई 2016 को अनमने होकर लिखे गए रजिस्टर के कुछ पन्नों से

पर्यावरण का अनुपम प्रेमी- अनुपम मिश्र

– स्मृति शेष

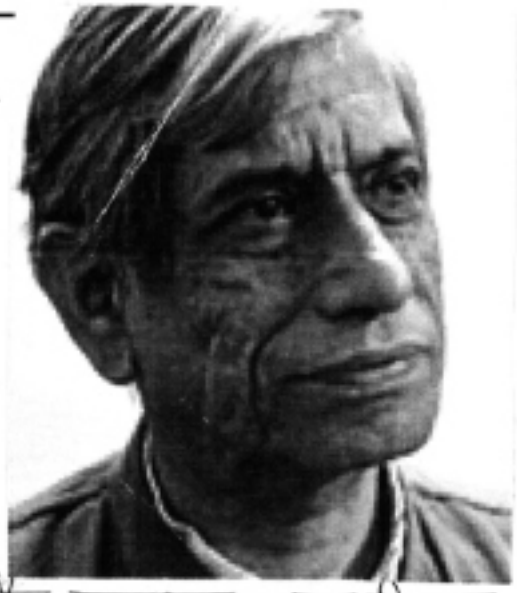

अनुपम मिश्र का जन्म महाराष्ट्र के वर्धा में श्रीमति सरला मिश्र और प्रसिद्ध कवि भवानीप्रसाद मिश्र के यहां दिसम्बर सन् १९५६ में हुआ। वह लेखक संपादक, छायाकार और गांधीवादी पर्यावरण विद् थे। उनका व्यक्तित्व और दृष्टिकोण सादा और सरल था। वह विकास की तरफ बेतहाशा दौड़ते समाज को भी कुदरत की कीमत समझाते थे। वे स्वयं जैसे निर्भय और निश्चल व्यक्ति थे, वही रूप उनका उनके साहित्य में भी झलकता था। अनुपम मिश्र प्रकृतिमय और अनुशासित व्यक्ति थे जो उनके साहित्य के माध्यम से बखूबी व्यक्त होता था। उनके भीतर कोई भेदभाव और छलकपट नही रहता था। वह बड़ी शालीन और सहज भाव से लोगो से बात करते थे वे इतना सादा जीवन अपनाते थे कि दो जोडी वस्त्र और बिना किसी टेलीफोन, इंटरनेट के उन्होंने अपना सारा जीवन बिता दिया। स्मार्टफोन और इंटरनेट के इस दौर में भी वह चिट्ठी पत्रों और पुराने टेलीफोन के आदमी थे। लेकिन

वह ठहरे या पीछे छूटे हुए नहीं थे। वे बड़ी तेजी से हो रहे बदलावों के भीतर जमे ठहरावों को हमसे बेहतर जानते थे। उनके चेहरे, चाल, चर्चा की शैली और भाषा में एक सरीखा सौष्ठव था। हिंदी के इतिहास में अनुपम का गद्य एक नया अध्याय जोड़ चुका था। मगर बात के तरीके में भी अनुपम वही प्रांजलता बरतते थे जो 80 के दशक में ही उनका हस्ताक्षर बन चुकी थी। अनुपम मिश्र की शैली में पानी जैसी पारदर्शिता लगातार बनी रहती थी, और पानी उनका प्रिय विषय रहता था।

पर्यावरण संरक्षण के प्रति अनुपम मिश्र इतने कर्तव्यनिष्ठ थे कि वे तब से काम कर रहे थे जब देश में कोई पर्यावरण विभाग भी नहीं खुला था। पर्यावरण की जिस तल्लीनता और बारीकी से अनुपम मिश्र ने खोज खबर ली वह सरकार और विभागों के लिए भी संभव नहीं था। उनके लेखन में पेड़, फसलें, पक्षी मिट्टी और अलग आकार व आकृति के सुंदर पत्थर भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहते थे। पढ़ते समय लगता है कि प्रकृति ने अपनी वास्तुकला अनुपम को अलग से बिठाकर समझाई थी। पर्यावरण केन्द्र की स्थापना में उनका बहुत बड़ा योगदान था।

आधुनिक सोच और लेखन के संदर्भ में अनुपम

मित्र विशिष्ट बने रहे क्योंकि अपने इरादों या फैसलों को लेकर किसी तरह के संचेतना या घोषणा उनके लेखन से नदारद है वे एक सजीव आंदोलन थे पर उन्हें एक्टीविस्ट कहना भूल या मूर्खता होगी ! गाँधी की तरह अनुपम गांव को भारत के समाज का जीवित, प्रतिरोधी सत्य मानते थे। यही विश्वास उन्हें देश के हर कोने में ले गया, जहाँ से प्रतिरोध और प्रेम की चकित कर देने वाली सत्यकथाएं एकट्ठा करके वे अपनी रचनाओं में रख सके। नए लोगों को अपने काम से जोड़ने की क्षमता के साथ-साथ वे पुराने परिचयों को हरियाते रहते थे और इस तरह स्वयं एक गांव बनते जा रहे थे ! उन्होंने सब कुछ छोड़कर पर्यावरण के प्रति अलख जगाने का काम किया। "नर्मदा बचाओ आंदोलन" जिसकी पर्याय बन चुकी है - मेधा पाटेकर। इस मुद्दे को सबसे पहले अनुपम मिश्र ने ही उठाया था ! गांधी शांति प्रतिष्ठान में उन्होंने पर्यावरण कक्ष की स्थापना की। वे इस प्रतिष्ठान की पत्रिका "गांधी मार्ग" के संस्थापक और संपादक भी थे।

उन्होंने बाढ़ के पानी का प्रबंधन और तालाबों द्वारा उसके संरक्षण की युक्ति के विकास का महत्वपूर्ण काम किया। भारत में सदियों से अपनाई जा रही जल संरक्षण तकनीकों की जानकारी में उन्हें महारथ हासिल थी

उन्होंने देश-विदेश में बताया कि किस तरह भारत के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले लोग अपनी भौगोलिक स्थिति, संसाधनों की उपलब्धता और जरूरतों को समझते हुए जल संरक्षण के कारगर तरीके अपनाते थे। उनका कहना था कि आधुनिक जल परियोजनाएं - इन पारंपरिक तरीकों के आगे फीकी और कम असरदार हैं।

वे २००२ में दिल्ली में स्थापित सेंटर फार एनवायरमेंट एंड फूड सिक्योरिटी के संस्थापक सदस्यों में एक थे। चंडी प्रसाद भट्ट के साथ काम करते हुए इन्होंने उत्तराखंड के "चिपको आंदोलन" में जंगलों को बचाने के लिए सहयोग किया था। उनकी पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' ग्रेल सहित 13 भाषाओं में प्रकाशित हुई जिसकी 1 लाख से अधिक प्रतियां बिक चुकी थी। वे राजेन्द्र सिंह के बनाये "तरुण भारत संघ" के लंबे समय तक अध्यक्ष रहे। २००७-२००८ में इन्हें मध्यप्रदेश सरकार के चंद्रशेखर आजाद राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन्हें २००९ में टेड द्वारा आयोजित सम्मेलन को संबोधित किया।

२०११ में उन्हें देश के प्रतिष्ठित जमनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित किया। 1996 में उन्हें देश के सर्वोच्च इंदिरा गांधी पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। उनकी प्रमुख रचनाएं - 'राजस्थान की रजत बूंदें'

का अनुवाद अंग्रेजी में भी हुआ।

अनुपम मिश्र की जीवन यात्रा एक सच्चे पुरुषार्थी की जीवन यात्रा रही है। वे कहते है कि प्राकृतिक अस्मिता के प्रति जिस तरह का उपेक्षा भाव हमारे देश में पिछली आधी सदी में देखने में आया है, उसी का परिणाम है कि आपदाएं हमारे सिरहाने खड़ी है और हमें होश नही है।

असल में उनका जीवन और काम लोक को समर्पित था उन्हे किसी भी परिचय की सीमा से बांधा नही जा सकता। वे ऐसी शख्सियत थे जिनसे बिना सूचना के लोग मिल सकते थे। अनुपम मिश्र की मृत्यु से इस देश ने एक सच्चा प्रकृति प्रेमी खो दिया। अनुपम मिश्र वास्तव में अनुपम थे। 'आज भी खरे है तालाब', 'राजस्थान की रजत बूंदे' जैसी उनकी लिखी किताबें जल संरक्षण की दुनिया में मील के पत्थर की तरह है। अनुपम मिश्र का जाना वास्तव में सबको सही अर्थों में अनाथ कर गया।

• पूजा झा
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

उम्दा अभिनय का कलाकार: ओमपुरी
- स्मृतिशेष

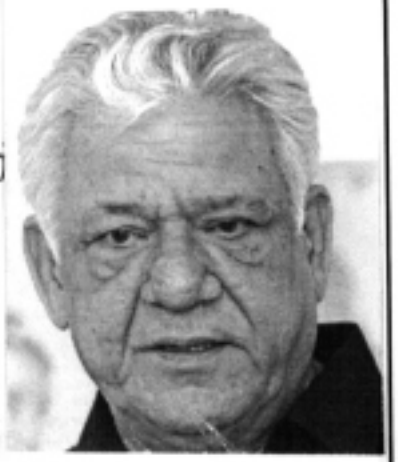

पिछली शताब्दी के आठवें दशक में हिन्दी सिनेमा में कला फिल्मों का ऐसा दौर आया था जिसमें देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं को काफी गहराई में जाकर पर्दे पर दिखलाने की कोशिश की गयी थी। कलाफिल्मों ने आकर्षक शरीर और आकर्षक शरीर वाले नायको की जगह बिल्कुल आम आदमी की शक्ल-सूरत वाले अभिनेताओं को तरजीह दी जिसे अभिनेता ओमपुरी ने बखूबी साकार किया।

हिन्दी फिल्म जगत में 'ओम पुरी' उन महत्वपूर्ण अभिनेताओं में से एक थे जो अपनी अभिनय क्षमता से किसी भी किरदार को पर्दे पर जीवंत करने में पूर्णतः सक्षम थे। पंजाब में एक छोटे से परिवार में ओम पुरी का जन्म हुआ, तमाम समस्याओं और संघर्षों को पार कर के ओम पुरी जी ने अपने लिए एक बेहतर रास्ता खुद बनाया। अपने जीवन के शुरूआती दौर में उन्होने अत्यंत दुखों का सामना किया। अपने साक्षात्कार में ओम पुरी जी ने स्वयं बताया है कि किस प्रकार उन्होंने ढाबे पर नौकरी की या फिर किसी वकील के साथ मिलकर मुंशी का काम भी किया। धीरे-धीरे ओम पुरी का रूझान अभिनय की तरफ हुआ और वह सिनेमा जगत के लिए जागरूक से होने लगे। इसकी शुरूआत उन्होंने पहले नाटकों से प्रारंभ की जिसमें वह अलग-अलग नाटको में भाग लेते रहे।

नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा (NSD) से ओम पुरी ने अभिनय की विधिवत शिक्षा प्राप्त की यही पर उनकी मुलाकात नसीरूद्दीन

शाह जैसे कलाकारों से भी हुई ओम पुरी कुछ वर्षों तक थियेटर से भी जुड़े रहे तब तक ओमपुरी के मन में एक सफल अभिनेता बनने का सपना प्रबल रूप में स्थापित हो चुका था, और अब वह पीछे मुड़ कर अपनी पुरानी जिंदगी की ओर नहीं देखना चाहते थे। यही अभिनेता बनने का सपना लेकर उन्होंने वर्ष 1976 में 'पुणे फिल्म संस्थान' में दाखिला लिया। इसी दौरान वह अलग-अलग नाटकों में निरंतर भाग लेते रहे और अपने अभिनेता बनने के सपने की ओर निरंतर अग्रसर होते रहे। अभिनय की औपचारिक प्रशिक्षण लेने के बाद ओम पुरी ने हिंदी फिल्मों की ओर अपना रुख किया। उनके फिल्मी कैरियर की शुरुआती वर्ष 1976 में मराठी फिल्म 'घासीराम कोतवाल' से हुई थी यह फिल्म विजय तेंदुलकर के मराठी नाटक पर आधारित थी। इस फिल्म में वह पहली बार हिन्दी दर्शको से रू-ब-रू हुए। 'घासीराम कोतवाल' की संवेदनशील भूमिका में ओम पुरी ने अपनी अभिनय क्षमता का प्रभावी परिचय दिया इस फिल्म के बाद उनकी प्रसंशा धीरे-धीरे बढ़ने लगी और वह मुख्य धारा की फिल्मो से अलग समानांतर फिल्मो के सर्वाधिक लोकप्रिय अभिनेता के रूप में उभरने लगे फिर इसके बाद लगातर फिल्मों में काम करने का सिलसिला चल पड़ा। 1981 में ओमपुरी को फिल्म 'आक्रोश' मिली। इस फिल्म में उनके अभिनय की तारीफ खुल कर होने लगी। ओम पुरी फिल्म जगत में एक चमकते हुए सितारे के रूप में उभरने लगे किन्तु उनके फिल्मी सफर में मील का पत्थर साबित हुई 'अर्धसत्य इस फिल्म में वह युवा, जुझारू आंदोलनकारी की भूमिका में नजर आए जिसे दर्शको ने बेहद पंसद किया और धीरे-धीरे ओम पुरी समानांतर सिनेमा की एक बड़ी जरूरत बन गए।

समानांतर सिनेमा जगत में अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज कराने के साथ-साथ ओमपुरी ने मुख्य धारा की फिल्मों का भी रुख किया कभी नायक, कभी खलनायक तो कभी चरित्र अभिनेता था

हास्य अभिनेता के रूप में वह अपने अभिनय का लोहा मनवाते रहे। ओमपुरी ने विभिन्न प्रकार की फिल्मों में अपनी अहम 'भूमिका' निभाई है परंतु उनकी एक फिल्म 'तमस' की याद अभी भी आती है जिसमें उन्होंने नत्थू एक चमडे का काम करने वाले व्यक्ति की भूमिका अदा की थी। साम्प्रदायिक दंगो पर आधारित यह फिल्म ओम पुरी के बेजोड़ अभिनय को आज भी खास सलाम करता है।

ओम पुरी ने अपने अभिनय का दायरा मात्र हिंदी फिल्मों तक ही सीमित नहीं रखा उनकी ख्याति अब इतनी बढ़ चुकी थी कि उन्होंने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी एक नई और अलग पहचान बनाई व्यावसायिक फिल्मों के अभिनेताओं जैसा रूप सौंदर्य इन्हें शायद न मिला हो, पर अभिनय के मामले में ये उन, 'सुदर्शन पुरुषों' से बहुत आगे थे। और अपने दमदार अभिनय के बल पर ही इस कलाकार ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय पहचान भी बनायी। 'ईस्ट इज़ ईस्ट' सिटी ऑफ जॉय 'वॉल्फ' 'द घोस्ट' एंड द डार्कनेस जैसी अंग्रेजी फिल्मों समेत उन्होंने लगभग 200 फिल्मों में काम किया। उन्होंने अपने उम्दा अभिनय की छाप हर जगह छोड़ी है। ओम पुरी अपने सशक्त अभिनय के साथ ही अपनी सशक्त आवाज के लिए भी जाने जाते हैं।

जीवन के कई वंसत देख चुके ओम पुरी ने गंभीर किरदारों के साथ-साथ हास्य अभिनय को भी उतनी ही बखूबी से निभाया है उन्होंने 'जाने भी दो यारो' जैसी डार्क कॉमेडी से लेकर आज के जामने की हास्य फिल्मों में काम किया उन फिल्मों में 'चाची 420', 'हेरी-फेरी' 'चुप-चुप के', 'देव', 'दबंग' आदि फिल्मे शामिल हैं। इन फिल्मों में उन्होंने दर्शकों को खूब हंसाया। ओम पुरी भारतीय सिनेमा के एक कालजयी अभिनेता थे उनके अभिनय का हर अंदाज दर्शको को प्रभावित करता है। अपने लंबे-फिल्मी सफर में ओम पुरी ने सशक्त अभिनय से कई उपलब्धियाँ और पुरस्कार अपने नाम

किए हैं। 'राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार', 'फिल्म फेयर पुरस्कार' और 'पदमश्री' आदि पुरस्कारो से उन्हें सम्मानित किया गया।

उनकी सफलता के बारे में उनके मित्र नसीरुद्दीन शाह ने लिखा हैं कि-

"ओमप्रकाश पुरीसे ओमपुरी बनने तक की पुरी यात्रा जिसका मैं चश्मदीद गवाह रहा हूँ, एक दुबले-पतले चेहरे पर कई दागों वाला युवक जो भूरी आँखो और लोहे के इरादो के साथ एक स्टोव, एक सॉसपैन और कुछ किताबो के साथ एक बरामदे मे रहता था, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कलाकार बन गया।"

इस नए साल के शुरूआत में ही एक दुखद घटना के रूप में 6 जनवरी 2017 को 66 वर्ष की आयु में अकस्मात ओम पुरी का निधन हो गया। इससे हिन्दी फिल्म जगत को अपूरणीय क्षति हुई हैं। अपने बेजोड अभिनय से उन्होंने भारतीय सिनेमा में कभी न मिट सकने वाली पहचान बनाई हैं। रूपहले पर्दे पर जब ओम पुरी का हँसता-मुस्कुराता चेहरा दिखता हैं तो दर्शको को भी अपनी खुशियों का अहसास होता हैं और उनके दर्द में दर्शक भी दुखी होते हैं। हिन्दी फिल्म जगत को उन्होने अपना अमूल्य योगदान दिया हैं जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

• पल्लवी शाय
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

Campus
आस पास

युवा... युवा हैं

युवा तो युवा ही होता है। उसकी इस विशेषता से जानबूझकर खेलने की कोशिश बेमानी है। दुख होता है जब हम अपने वृद्धों या ऐसे लोग जो पचास या साठ वर्ष की अवस्था तक पहुँच जाते हैं और युवाओं को लेकर तमाम भ्रांन्तियाँ मन में गढ़ने लगते हैं। ये तो पल भर में युवाओं की उन शक्तियों को खारिज करने में लग जाते हैं जो असीम सम्भावनाओं और परिवर्तनों की द्योतक हैं। हम अक्सर सुनते हैं कि अरे.. ये अभी बच्चा है, जवान है, गरम खून है या फिर अभी बहुत उछल रहा है। मैं ध्यान दिलाना चाहूँगा कि इनकी यही जवानी, इनके खून की यही गरमाहट नये युग का निर्माण करती है। बात युवाओं की है तो युवा हर क्षेत्र में अपने कौशल के बूते नये आयाम स्थापित करता है, चाहे वह राजनीतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो या फिर धार्मिक हो। दुनिया की जितनी महान क्रान्तियाँ हुई उसमें युवाओं की अहम भूमिका रही है, चाहे वो बोस्टन टी पार्टी या फिर बास्तील दुर्ग का पतन है या फिर इंग्लैण्ड की रक्तहीन क्रान्ति। बात अगर अपने देश की करे तो चंद्रशेखर, आजाद भगत सिंह, स्वामी विवेकानंद और सुभाष चंद्र बोस इत्यादि नाम दिखाई देते हैं जिन्होंने नयी राहों का अन्वेषण किया। धार्मिक क्षेत्र की बात करें तो स्वामी

विवेकानंद जो संतों और साधुओं के होने का एक नया प्रतिमान स्थापित करते हैं। राजनीतिक क्षेत्र की बात करे तो हमारा स्वतंत्रता संग्राम ऐसे अनेक उदाहरणों की झाँकी है। कांग्रेस में गरम दल का बनना और उसकी मान्यता, उसके द्वारा की गई गतिविधियाँ काफी मायने रखती है। यूँ ही नहीं आजाद और भगत सिंह ने मौत का आलिंगन किया, उसका एक मकसद था। खून की गरमाहट ही थी कि सुभाष चंद्र बोष ने जापान के सहयोग से अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह को मुक्त करा लिया था।

ऐसी बात नहीं है कि मैंने जिन बातों का जिक्र किया उससे लोग अनभिज्ञ हैं। बात उठती है कि फिर समस्या क्या है? हमान आकर्षित उस ओर करना चाहूँगा यदि आज के युवाओं पर उँगली उठाने वाले अपने युवावस्था का स्मरण करें, यकीनन उन्हें इस बात का एहसास होगा कि उस वक्त में हम भी ऐसे ही थे। अर्थात् जरूरत है समय की अवधि को थोड़ा बढ़ा कर देखने की, यदि हम पाँच सौ साल का काल ले तो देखेंगे कि युवा तो वैसे ही होता है अधैर्य, जल्दबाजी उसकी विशेषताओं में से है, बस समय बदल जाता है। समय के साथ जो युवा होता है वो युवावस्था के सोपान को पार कर आगे बढ़ जाता है और युवाओं की एक नयी खेप उसके सामने आ खड़ी होती है। पर क्या है कि जो अभी युवापन को जी कर आया है वो भी युवाओं पर प्रतिक्रिया देने लगता है। मेरी समझ से ये बातें बदलते, वक्त और बदलती

समस्याओं और परिस्थितियों के कारण हैं। भारतीय समाज संयुक्त परिवार प्रथा से स्कल परिवार की तरफ तेजी से शिफ्ट हो रहा है, ऊपर से भारत जैसे घनी आबादी वाले देश में रोजगार की समस्या, इन सब का प्रभाव सबसे ज्यादा युवाओं पर ही पड़ता है। युवावस्था का जो कालांश होता है वो लगभग 16 से 30 वर्ष तक होता है, और इसी में उसे पढ़ना - लिखना, रोजगार ढूंढना, शादी - ब्याह करना और फिर भविष्य के लिए नियोजन आदि जैसे परिवर्तनों से गुजरना पड़ता है। जाहिर है इतनी सारी जिम्मेदारियों के मध्य, आज के समय को देखते हुए जिसका जिक्र किया जा चुका है, कहीं न कहीं असंतुष्टता की भावना बन जाती है, कुंठा घर कर जाती है ये व्यक्तिगत समस्याओं की पीड़ा सड़क पर, चौराहे पर, रिक्शे वाले पर अनायास ही निकलती हुई दिखाई देती है। हाँ युवाओं को संयम बरतने की जरूरत है पर समस्या का हल ये नहीं है। इसके लिए प्रशासन को उचित कदम उठाने होंगे ताकि जो जिस योग्य है उसे उसका प्रतिफल मिल सके। क्योंकि जबतक ये सिलसिला चलता रहेगा और युवाओं पर उँगलियां उठती रहेगी जिसकी आधार अतार्किक सोच - विचार होगी। और इन वयोवृद्धों को यह भी सोचना चाहिए कि जिसे ये काबू करने की कोशिश कर रहे हैं वो इस देश की आधे से अधिक आबादी है जो कल का भविष्य है। परिवर्तन लाने की इनकी इस क्षमता को हतोत्साहित करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, बल्कि हम जिस समाज में रह रहे हैं उसका स्वरूप ऐसा देना चाहिए, जिससे सही - गलत

का स्वयं ही एहसास हो सके। परिवार जो समाज की इकाई होती है वहाँ पर भी यह बात लागू होती है। समय के साथ परिवर्तन आता है और हमें भी परिवर्तित होते रहना चाहिए और नयी चीजों को अपनाना चाहिए। हम समानता की बात करते हैं तो वह युवा ही है जो अन्तर्जातीय विवाह कर बन्धनों को तोड़ता है और एक नयी शुरूआत करता है और इसके हमें काफी उदाहरण आज दिख जाते हैं। सिर्फ कहने से प्रगतिवादी नहीं होना होगा, बल्कि ऐसे प्रगतिवादी परिवर्तनों के लिए भी तैयार होना होगा।

वास्तव में युवा शक्ति के कर्त्तव्य बनाये रखना, उसे संचित एवं पोषित करना बेहद जरूरी है क्योंकि उसकी दृढ़ता से असंभव को भी संभव किया जा सकता है। आज की युवा पीढ़ी की सोच का दायरा विस्तृत है, वे केवल भावनाओं के बलबूते पर ही निर्णय नहीं लेते वरन् सोच-समझकर अपनी क्षमताओं का उपयोग कर रहे हैं। उनकी सोच का स्वागत होना चाहिए। आखिर ये ही तो देश के भावी कर्णधार हैं।

• राघवेन्द्र त्रिपाठी
(एम. ए हिंदी)
किरोड़ीमल महाविद्यालय

प्रसाद नहीं मिला

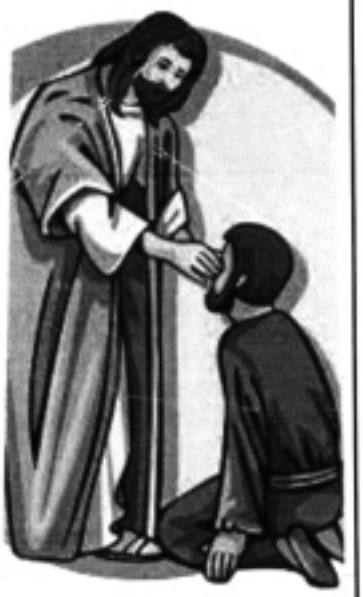

पिछले काफी दिनों से 'जूठन' पढ़ रहा था। कल अंतिम पृष्ठ का अंतिम शब्द भी पढ़ डाला। समाज में दलितों का तिरस्कार, शोषण, दमन, बाबा साहेब के प्रति सवर्णों की घृणा, विकसित और उपेक्षित अवर्णों के बीच बढ़ती खाई, दलित व्यक्तियों द्वारा स्वयं की पहचान छिपाने की चेष्टा करना इत्यादि कई घटनाओं के सजीव चित्रण को उस वातावरण में पहुँच कर जीने की कोशिश कर रहा था। हालाँकि ये कहना भी उनके मुहँ पर एक जोरदार तमाचा ही होगा कि मैं दलितों के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहा हूँ। क्योंकि मेरी मान्यता है कि ये सहानुभूति नहीं स्वानुभूति का विषय है।

अब प्रस्थान करते हैं शीर्षक की ओर तथा उस घटना की ओर जिसने मुझे बाध्य किया इसे शब्दबद्ध करने के लिए। दिन के साढ़े बारह बज रहे थे। 'कॉटेज येरा प्लेस' होटल से एक परिचित से मिलकर बाहर निकला ही था कि चिलचिलाती धूप में अनगिनत प्रश्नों की वर्षा होने लगी यथा- तीन बजे तक कॉलेज पहुँचना है, तब तक क्या किया जाए? मेट्रो से चला जाए अथवा बस से? कहीं घूमने चला जाए या फिर क्या किया जाए? विचारों की गलियों से प्रश्नों तथा मस्तिष्क के असंख्य तरंगों को कूद फाँद कर तेजी से आगे बढ़ा चला जा रहा था कि चौराहे के एक रास्ते ने मुझे अपनी ओर खींचा। मैं सम्मोहित-सा चलता गया था शायद सड़क ही चल रही हो, कुछ याद नहीं, हाँ इतना याद है सूर्य सिर पर था, मानो अभी हाथ ऊपर करूँ तो छू लूँ।

पैदल चलना मुझे बचपन से पसंद है। नहीं-नहीं आदत-सी हो गई। तीन किलोमीटर पैदल चलकर विद्यालय जाना और फिर वापस पैदल आना, इसे 'पसंद' कहना समीचीन नहीं होगा। अब मस्तिष्क तक फैसले पर अटल हो गया था कि- रामकृष्ण आश्रम मार्ग मेट्रो स्टेशन से शिवाजी स्टेडियम तक पैदल जाना है, वहाँ से बस से कॉलेज

जाना है। 'गोल मार्केट' होते हुए आगे बढ़ा कि अचानक वह गिरिजाघर दिखा जिसमें प्रवेश पाने के लिए गत 'क्रिसमस डे' पर पूरे तीन घंटे कतार में खड़ा होना पड़ा था। इसके कुछ ही दिन बाद 'पी.के.' फिल्म देखा जिसमें इसी स्थान को दिखाया गया हैं जहाँ मैं अभी खड़ा हूँ। पलक झपकते ही मन में विचार आया कि अन्दर चला जाए। सभी ज्ञानेन्द्रियों ने बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकृति दे दी। दरवाजे के ठीक पाँच कदम चलने पर 'ईशा मसीह' की एक प्रतिमा है। प्रतिमा के सामने एक दम्पति मोमबत्ती जला रहे थे। प्रतिभा से थोड़ा हटकर एक विशाल चित्र है जिस पर लिखा है–

"प्रणाम मरियम, कृपापूर्ण, प्रभु तेरे साथ है, धन्य है तू स्त्रियों में और धन्य है तेरे गर्भ का फल, येशु। हे संत मरियम! परमेश्वर की माँ! प्रार्थना कर हम पापियों के लिए, अब और हमारे मरने के समय। अमेन"

इसके आगे लिखा है–

"हे परम दयालु कुँवारी मरियम, याद कीजिये कि यह कभी सुनने में नहीं आया कि कोई आपकी मदद माँगने और आपकी विनतियों की सहायता खोजने आपके पास आया हो, और आपसे असहाय छोड़ा गया हो। हे कुँवारियों की कुँवारी, हे मेरी माँ। इसी आसरे से मैं आपके पास दौड़ा आता हूँ और कराहते हुए पापी के रूप में आपके सामने खड़ा हूँ। हे परमेश्वर की शब्द की माँ, मेरे शब्दों को अस्वीकार मत कीजिए, पर दया से उनको सुनिये और पूरा कीजिए। आमेन।"

इस प्रार्थना के कुछ शब्द मुझे खटक रहे थे यथा- पापी, कुँवारी, दया इत्यादि। इस प्रार्थना के रचनाकार को मन-ही-मन भला बुरा कहा कि-तुम पापी होगे, मैं नहीं हूँ। जो मेरा कर्त्तव्य है उसे पूर्ण ईमानदारी से पूरा करने के लिए हमेशा प्रयासरत रहता हूँ या कर्त्तव्य नहीं भी निभाता तो कोई पाप तो नहीं कर रहा हूँ ना। क्योंकि जो कुछ भी हो रहा है अच्छा हो रहा है फिर पाप कैसा? सब पुण्य है, जो पाप कर रहा है वह भी पुण्य कर रहा है। दूसरा शब्द है कुँवारी अर्थात ईसा मसीह की माँ मरियम कुँवारी थी। इस शब्द पर टिप्पणी करने की समझ मुझमें नहीं है। तीसरा शब्द है दया अर्थात हम मरियम से यह प्रार्थना कर रहे हैं कि हमने जितने भी पाप किये हैं।

(प्रार्थना के कथनानुसार), दया करके उन पापों को क्षमा कर दें। क्षमा क्यों कर दें? जब पाप किया है तो इसका दण्ड भोगने से डर कैसा? पापा करते समय मन में जो हिम्मत, आत्मविश्वास, हौसला, उमंग, उत्साह इत्यादि भाव हिलोरे मार रहे थे उन्हें स्मरण करो और दण्ड भुगतने के लिए स्वंय को तैयार करो।

बैग से कैमरा निकालकर मैंने कुछ चित्र लिए और अन्दर की ओर बढ़ा। गिरजाघर के बाहर एक भी जूते-चप्पल ना देखकर सोच में पड़ गया कि चप्पल निकालकर कहाँ रखूँ क्योंकि पिछले बार जब यहाँ आया था तो इतनी भीड़ थी कि ठीक से कुछ याद नहीं। अन्दर तो नहीं ले जा सकते। या हो सकता है अन्दर कोई व्यक्ति ना हो? इधर-उधर टहलने लगा कि कोई आएगा तो देखता हूँ वह चप्पल था जूते उतारकर कहाँ रखता है। अचानक दो व्यक्ति आते दिखाई पड़े, मैं गौर से देखने लगा। पर ये क्या? ये लोग तो जूता पहनकर ही अन्दर चले गए। मुझे लगा अंदर जूता घर होगा जैसा कि कमल मंदिर, राजघाट, बंगला साहिब गुरूद्वारा, अक्षरधाम मंदिर, छत्तरपुर मंदिर इत्यादि में हैं। अन्दर गया तो जूता घर दिखा ही नहीं, अन्दर देख रहा हूँ बीस-पच्चीस लोग बेंच पर बैठे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं और जूते भी पहने हुए हैं। प्रायः बचपन से आज तक कभी भी, कहीं भी मैं पीछे नहीं बैठा, इसीलिए बीच की एक बेंच पर बैठ गया जिसके आगे और पीछे वाले बेंच पर कोई नहीं था। जगह-जगह पर लिखा है- "कृपया मौन रहें" मैं मौन हो गया, जेब से मोबाइल निकालकर उसे भी मौन कर दिया। मेरे ठीक सामने लाल रंग की दो पुस्तकें रखी थी। एक को उठाकर पृष्ठ पलटने लगा किन्तु मेरा ध्यान पुस्तक पर कम और वहाँ उपस्थित व्यक्तियों की गतिविधियों पर अधिक था। कौन किस प्रकार बैठा है, किस प्रकार हाथ जोड़े हैं, आँखे बंद हैं या खुली हैं इत्यादि। ठीक सामने की दीवार पर धोती पहने एक व्यक्ति के दोनों हाथों और पैरों पर कील ठोका हुआ प्रतिमा है, शायद वह ईसा मसीह की प्रतिमा है प्रतिमा के आगे लगभग एक मीटर से भी लम्बी तीन मोमबत्तियाँ एक तरफ तथा तीन दूसरी तरफ हैं। दोनों तरफ के तीनों मोमबत्तियों के बीच में दो छोटी-छोटी मोमबत्तियाँ हैं। अर्थात छः बड़े और चार छोटे मोमबत्ती हमेशा

जलती रहती हैं। हालाँकि प्रकाश के लिए आवश्यकता से भी अधिक विद्युत लैम्प लगे हुए हैं।

पुस्तक के पृष्ठ को पलट रहा हूँ। सम्पूर्ण पुस्तक अंग्रेजी में गद्यात्मक शैली में हैं, शायद 'बाइबिल' हो? नहीं जानता। टन-टन!! घंटा बजा एक व्यक्ति सफेद रंग का कपड़ा पहने हुए, कुछ व्यक्ति उसे 'फादर' कह रहे हैं, अभी-अभी प्रतिमा के सम्मुख आया हैं। वह उद्घोषक मंच पर आकर 'माइक' ठीक करके कुछ बोलने लगा। सभी लोग खड़े होकर कुछ बोले और एक सुर में कुछ गाने लगे, मैं मौन रहा। यह भारत का सबसे बड़ा गिरजाघर हैं जो लगभग ४० साल पुराना हैं। मुझे स्पष्ट सुनाई नहीं दे रहा था, क्योंकि पहले कभी ये सब सुना भी नहीं था और दीवार से टकराकर आवाजें गूँजने लगती थी। सफेद पोशाक वाला व्यक्ति पुस्तक के अध्याय का नाम कुछ इस प्रकार बोला जैसे विद्यालय के शिक्षक बोलते थे- फलाना अध्याय के फलाना पाठ का फलाना पृष्ठ संख्या। मैंने भी वही पृष्ठ निकाला किन्तु जो वह बोल रहा था वह उस पृष्ठ पर नहीं लिखा था और जो उस पृष्ठ पर लिखा था वह उसे बोल नहीं रहा था। पुस्तक को उसके उचित स्थान पर रखकर विचारों के मटमैले पानी में कूद पड़ा। उस पानी में बहुत देर ढूंढने के बाद एक ही वस्तु चुनकर बाहर निकला- प्रसाद। हाँ, प्रसाद लेकर ही जाऊँगा। मंदिरों में तो प्रसाद के समय ही सारी भीड़ इकट्ठा होती हैं और यहाँ तो भीड़ भी नहीं हैं फिर प्रसाद कैसे छोड़ा जाए? सभी एक सुर में अंग्रेजी में गा रहे थे, मैं अकेला था जो केवल सुन रहा था। सभी चुप हो गए और अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। उस व्यक्ति ने चमचमाते हुए बर्तन को उठाकर हमारी ओर दिखाया और फिर उसे अकेले ही पी गया। शायद उस बर्तन में कुछ पेय पदार्थ रहा होगा। एक महिला उसके पास गई और घुटनों के बल बैठकर दंडवत की। फिर वह महिला दूसरे उद्घोषक मंच पर जाकर उसी पुस्तक से कुछ गाने लगी। सब लोग खड़े हो गए, मुझे भी खड़ा होना पड़ा। फिर वही कहानी। सभी गा रहे थे, मैं मौन था। कुछ देर

बाद वह महिला चुप हो गई और सभी लोग बैठ गए। कुछ समय पश्चात पुनः वह व्यक्ति उसी उद्घोषक मंच पर आया जिस पर अभी-अभी महिला गा रही थी। वह फिर से गाने लगा, सभी गाने लगे, मैं मौन रहा। इस मध्य आगे और पीछे के व्यक्तियों के गतिविधियों का मैं अध्ययन करता रहा। प्रार्थना खत्म हुई, सब लोग अपने चारों तरफ एक-दूसरे को हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगे। आगे एक व्यक्ति थे जिसने पीछे मुड़कर मुझे नमस्कार किया तो मैंने भी उसे नमस्कार किया और चारों ओर मुड़कर सभी को नमस्कार किया।

तीनों प्रार्थना सुनने के बाद मुझे यही समझ आया कि जो बात मुख्यद्वार के पास उस चित्र पर लिखा है वही प्रार्थना यहाँ पर सीधा 'ईसा मसीह' से की जा रही है। हे प्रभु, आप हम पर दया करें और हमारी भूला को क्षमा कर दें। इसी बात को किसी महान कवि ने अपने रचना कौशल और सृजनात्मकता के गुण से पुस्तक का रूप दे दिया होगा।

मेरा उत्साह चरम पर था। प्रसाद वितरण, अहा! भक्ति का मूल रस तो इसी में है। देखते ही देखते दो कतारे लग गई, किन्तु इस कतार में मंदिरों वाली कतार जैसा ना तो भीड़ थी, ना उमंग ना ही उत्साह, यहाँ प्रसाद लेने के लिए ना तो कोई परेशान दिख रहा था ना धक्कामुक्की थी और ना ही कोई ऊँची आवाज में प्रसाद माँग रहा था। अपनी जगह पर बैठा मैं चिंता में पड़ गया कि ये कैसा प्रसाद वितरण है? एक लड़की बाहर से आई, बैग लटकाए कतार में खड़ी हो गई। बगल के कतार से एक व्यक्ति ने उसे बैठने का इशारा किया, वह जाकर बैठा गई। मुझे लगा कि बैग लेकर कतार में खड़ा होने के कारण उसे बैठा दिया गया है। इधर-उधर देखा, आसपास के सभी लोग अनुशासन का पालन बड़ी कठोरता से किये जा रहे थे। बैग को वहीं छोड़कर मैं भी कतार में खड़ा हो गया। इतने देर के बाद उठने के कारण यही था कि मैं तय नहीं कर पा रहा था

कि प्रसाद में है क्या? सुना है यहाँ शराब चढ़ाई जाती है। खैर, अब मैं कतार में खड़ा हूँ। आगे का दृश्य देखकर मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। 'फादर' प्रसाद दे नहीं रहे हैं बल्कि मुँह में खिला रहे हैं। गिरजाघर में इतने देर बैठने के बाद मेरे मन में 'इसाई' धर्म के प्रति अत्यधिक श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो गया था। यह दृश्य देखकर तो मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ कि इसका वर्णन शब्दों में कर ही नहीं जा सकता। हाँ, एक बात और थी कि प्रसाद वितरण के आरम्भ से ही कोई प्रार्थना गाई जा रही थी। किन्तु मैं अब भी मौन था। बगल के कतार में खडे उसी व्यक्ति ने जिसने अभी-अभी एक लड़की को बैठने का आदेश दिया था मुझे चुपचाप खड़ा देखकर धड़ल्ले से पूछा बैठा- "आप इसाई हो? मैं इस समय किसी भी प्रश्न के आक्रमण के लिए नहीं बल्कि प्रसाद लेने के लिए तैयार था। और ऐसे प्रश्न मुझसे पूछे जाएंगे, ऐसा तो सपने में भी नहीं सोचा था वह भी भारत जैसे देश के सबसे बड़े गिरिजाघर में 'नहीं' मैंने तुरंत जवाब दिया। 'तो फिर बैठ जाओ' उसने कहा।

अपने स्थान पर आकर मैं धम्म से बैठ गया और मस्तिष्क में 'जूठन' के एक-एक शब्द से लेकर छब्बीस जनवरी और पंद्रह अगस्त के नारे 'हिन्दु मुस्लिम सिख इसाई, आपस में है भाई-भाई' में घनघोर युद्ध होने लगा। भीष्म पितामह की तरह मैं युद्ध को देखने के लिए विवश था और मन में केवल एक ही विचार आ रहा था कि हिन्दु हिन्दु है मुसलमान मुसलमान, सिक्ख सिक्ख है और इसाई इसाई। बैग उठाकर बहुत तेजी से मैं बाहर निकला बाहर कोई अंग्रेजी सिपाही नहीं था। मोबाइल निकालकर कैलेण्डर देखा - इक्कीस अगस्त दो हजार पंद्रह।

• दीपेश कुमार
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)
श्यामलाल सांध्य महाविद्यालय

मैं क्या ?

कमाल लगती हूँ,
धमाल लगती हूँ,
बेमिसाल लगती हूँ,
कहने को तो इंसान हूँ,
पर इन लोफरो को माल लगती हूँ

सीता बनती हूँ,
सावित्री बनती हूँ,
अहिल्या बनती हूँ,
कभी द्रौपदी बन जाती हूँ,
पर कबीरा को तो मायाजाल लगती हूँ

बेटी भी हूँ
बहन भी हूँ
पत्नी भी हूँ
जीवनदायनी माँ भी मैं हूँ,
फिर भी समाज को जी का जंजाल लगती हूँ

आक्षेप नहीं लगाती मैं,
पूछती हूँ बस एक सवाल,
क्यूँ 'मैं' नज़र नहीं आती तुम्हें
क्या बस एक खिलवाड़ लगती हूँ

• ज्योति

(मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय)

तलाश

गुजरे उन लम्हों की फिर से तलाश है
उन उजली सी किरणों सा फिर उमड़ा जज़्बात है
जी तो रहें हैं तेरे बिना भी खुशी से हम,
फिर न जानें मन में दफन कोई खराश है
क्यों साहिल पर होकर भी डूबनें का एहसास है।
गुजरे उन लम्हों की फिर से तलाश है।

बेचैन सा तुझे ढूँढता, छेड़ता बस यही साज है
कि काश पानी एक बूंद का कतरा तो मिले
इस जलते दरिया में आस का एक जरिया तो मिले,
इस तपती सी जमीन पर पलाश की आग तो जले,
पर दस्तक सी देकर फिर न लौटना,
ये तेरा ही अंदाज़ है॥
गुज़रे लम्हो की फिर से तलाश है
तेरे लिए बेखुदी में टूटना ये हमारा एक राज है।
कोरे से ज़िंदगी के इन पन्नों को
बस तेरे ही रंगों से भरनें की चाहत है
जिंदा होनें का एहसास है
पल भर को भी उस मुस्कुराहट का नसीब होना
बहुत खास है
कानों में आज भी गूंजती तेरी मीठी सी आवाज है
तेरी याद में लिखे इन तरानों का ये तो बस आगाज़ है
गुज़रे लम्हो की फिर से तलाश है।

• प्रतिभा मिश्रा, ज़ियोलॉजी विशेष
हंसराज महाविद्यालय

बदलता युग, परिवेश और साहित्य

साहित्य का व्यक्ति, समाज व वातावरण से गहरा रिश्ता है। साहित्य व्यक्ति, समाज एवं परिवेश के बारे में बताने के साथ-साथ इनका मूल्यांकन भी करता है। यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखे तब हम पाते हैं कि सभ्यता के आरंभ से ही वह मूल्यांकन करता हुआ आया है। आरंभ से ही यह मौखिक व लिखित पाया गया है। मौखिक परम्परा में ही 'लोक साहित्य' का शास्त्रीयता में बदलाव 'साहित्य' का सृजन बनकर लिखित रूप ग्रहण करता है।

साहित्य का संबंध बदलता रहता है। साहित्य में बदलती सभ्यता, समाज, परिवेश, युग की अभिव्यक्ति है। समाज में आते बदलाव की ओर ध्यान दे तो पता चलता है कि शिक्षा के ही आगमन से व्यक्ति चेतना का विकास होता है। शिक्षा प्राप्तकर, स्त्री, दलित व आदिवासी अपनी अस्मिताओं की अग्रसर होते हैं। यही बदलाव व्यक्ति के सहसंबंधो की व्याख्या करता है। भारतेंदु अंग्रेजों से भारत की पराधीनता पर यह प्रश्न उठाते हैं कि 'हम मनुष्य होकर भी गुलाम क्यों हैं'। तब यह पंक्ति आधुनिकता के चमक की सूचक बन जाती है परंतु यह पंक्ति

पुनर्व्याख्यायित होकर 'अस्मिता का संकट' पर प्रश्न छोड़ती है कि हम मनुष्य होकर भी सामाजिक बंधनों में फँसकर पितृसत्तात्मक समाज, पुरुषप्रधान समाज, ब्राह्मणवादी समाज में पराधीन क्यों है? इस प्रश्न के संदर्भ बदलने से यह उत्तर आधुनिकता का द्योतक बन जाती है।

"ग्लोबलाइजेशन' की दुनिया में घूमता हुआ व्यक्ति नए समाज की स्थापना कर चुका है। भूमंडलीकरण के कारण तकनीक, शहरीकरण, औद्योगिकरण इत्यादि के प्रभाव में समाज, परिवेश व व्यक्ति का पारस्परिक संबंध ही बदल चुका है। भूमंडलीकरण से पूर्व साहित्य में समाज सरलता से निरूपित होता था। समाज व व्यक्ति के संबंध की व्याख्या भी। प्रेमचंद के गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि निर्मला, मनोरमा इत्यादि उपन्यासों में व्यक्ति का संबंध प्रत्यक्ष रूप से समाज से होता था। व्यक्ति समाज द्वारा नियंत्रित, अनुशासित व संचालित होता था परंतु तकनीकीकरण के दौर में जटिल होती जीवनशैली में व्यक्ति भी जटिल होता जा रहा है। वह स्वयं जितना अधिक 'स्मार्ट' बनता है उतना ही उस तकनीक की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। इसके कारण वह समाज से कट जाता है। क्योंकि तकनीक उसे यांत्रिक निजीसुख, लाभ की ओर केन्द्रित कर देती है। साहित्य समाज व व्यक्ति

के संबधो की व्याख्या करता है। इसी कारण बदलते युग परिवेश में साहित्य भी अत्यंत जटिल होते जा रहे व्यक्ति की स्वार्थपरता को उघाड़कर सामने रख देता है

स्वाधीनता के बाद यदि हम साहित्य का मूल्यांकन करे तो पाते है कि अब व्यक्ति v/s समाज की परिकल्पना गढ़ी जा रही है। जहां व्यक्ति की ही श्रेष्ठता सिद्ध हो रही है। 'चीफ की दावत' भीष्म साहनी की कहानी इस सत्य को उद्‌भासित करने के लिए सक्षम है कि व्यक्ति किस प्रकार अपनी सफलता की अंधाधुंध दौड़ में अपने ही प्रियजनों का इस्तेमाल वस्तु के रूप में करता है। यह ऐसा समाज है जहाँ व्यक्ति वस्तु के रूप मे परिवर्तित हो गया है। इसी कारण संबधो की पुर्नव्याख्या की आवश्यकता आन पड़ी है।

इसी ग्लोबलाइजेशन के दौर में नए-नए अनुशासन भी साहित्य में शामिल होते जा रहे हैं। इसी में "हिंदी सिनेमा' भी शामिल है। यह सिनेमा आधुनिक तकनीकीकरण का नायाब अजूबा ही है। पहले समय में शिक्षित व्यक्ति ही साहित्य का अध्ययन कर उनके गूढ़ अर्थो को खोल सकता है जिससे साहित्य व्यापकता को प्राप्त नही कर पाता था। परंतु बदलते समय में सिनेमा ने इस समस्या का निराकरण ही किया है।

परंतु आज ऐसा नहीं है कि शिक्षित व्यक्ति कम है बल्कि बात यह है कि यांत्रिकता में व्यक्ति के पास समय कम है। इसी कारण सिनेमा के द्वारा भी व्यक्ति को शिक्षित करने का कार्य किया जा रहा है। परंतु इसमें भी व्यावसायिकता की प्राथमिकता होने के कारण मनोरंजन पर अधिक बल दिया जाता है। फिर भी कलात्मक परिप्रेक्ष्य में शानदार फिल्मों का निर्माण होता ही रहा है जिसमें देवदास, रजनीगंधा, मुगल-ए-आजम, पिंक मदर इंडिया, दंगल, थ्री इडियट इत्यादि फिल्में हैं। इन फिल्मों के निर्माण से व्यक्ति को समाज का असली चेहरा दिखाया गया है।

आज के हिंदी सिनेमा ने तमाम तरह की रूढ़ियों को तोड़ा है। इसने अपने समय की नब्ज को पहचाना और नए दर्शक को तैयार किया है। ये फिल्में सामाजिक सवालों से टकराती, बल्कि पूरी सामाजिक व्यवस्था से जूझती हैं। वस्तुतः आज सिनेमा ने मनोरंजन के अर्थ और पैमाने बदले हैं। आज व्यक्ति सोशल मीडिया से जुड़ा हुआ है जहाँ पर भाषा का बदला हुआ रूप दिखाई देता है। आज का उत्तर-आधुनिक व्यक्ति हिंदी + इंग्लिश अर्थात् हिंग्लिश भाषा का प्रयोग करता हुआ नजर आता है।

इस विकृत होती भाषा में व्यक्ति व समाज का स्वरूप भी विकृत होता जा रहा है। नए-नए संबंधों ने पीछे छूटते हुए व्यक्तियों को हाशिए पर पहुँचा दिया है। साहित्य व्यक्ति को मानवीय बने रहने की गुहार करता है। क्योंकि इसी मनुष्यता के कारण ही दुनिया कायम है। तभी 'विश्व बंधुत्व' की बात कही जाती है परंतु बदलते युग परिवेश में व्यक्ति तकनीक को नहीं बल्कि तकनीक से संचालित होता जा रहा है। यही चुनौती बनकर साहित्यकार के सामने प्रकट हो रही है कि इस समय में जहां लेखक की मृत्यु, इतिहास की मृत्यु की घोषणा कर दी गई है। वहीं 'मनुष्यता' को बनाए रखना बहुत दुर्लभ कार्य जान पड़ता है। इसी बदलते समय का कुप्रभाव साहित्य पर पड़कर 'साहित्य के संकट' के नाम से उजागर होता जा रहा है।

• निम्मा
(एम. ए हिंदी)
हिन्दू महाविद्यालय

मायाजाल

ये सोशल मीडिया है मेरे भाई
सबकी जिन्दगी है इसने ठहराई
कोई भी अब आमने-सामने हो
बात नहीं करता,
इस सोशल मीडिया में गुम गई है-
जिन्दगी कहीं।

बच्चों को देखो तो फेसबुक फोन
की लत लगाते हैं
अपने ही रिश्तेदारों से मिलने से
कतराते हैं,
नए-नए अंजान लोगों से
फेसबुक पर मिलते हैं
सोशल मीडिया के गुन गाते हैं
और फेस टू फेस मिलने से
डरते हैं।

सोशल मीडिया ने हमारी रफ्तार
बदल दी है
कम करने के नाम दूरी बढ़ाई है,
यह आधुनिक होने का पैमाना
बन गया है,
बच्चा-बड़ा सभी देखो,
इसका दीवाना बन गया है।

ना जाने लोग क्यों इसमें मग्न रहते हैं
इसको ही वो अपना जीवन मानते हैं:
फेसबुक ने किया बहुत नुकसान है.
इस नुकसान का ना कोई समाधान है।

क्या दिन थे, वो जब लोग मिल-जुलकर
बात किया करते थे,
सुख-दुख में खड़े होकर एक-दूसरे का
साथ दिया करते थे,
एक-दूसरे से दिल से जुड़ते थे
समय निकाल आपस में मिलते थे।

यह एक माया जाल है भाई!
सोच-बूझकर इसका इस्तेमाल
करो रे भाई!
बनाओ इससे ऐसा रिश्ता
जो सच्चा, सार्थक हो मेरे भाई!
ये सोशल मीडिया है मेरे भाई!!

• लविता बैरी
बी. कॉम, तृतीय वर्ष
जीसस एंड मेरी महाविधालय

दिल्ली विश्वविद्यालय : छात्र राजनीति

दिल्ली विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा की एलीट संस्था है, जहाँ की अपनी खास संस्कृति है। दिल्ली में रहने वाला एक खास अंग्रेजीदां तबका यहाँ की संस्कृति तय करता है। और बाकी दूर दराज से आए छात्र उसका अनुसरण करते हैं। छात्र राजनीति यहां छात्रों के हाथ में नहीं है बल्कि इस पर बड़े दलों और राजनीतिक मठाधीशों का कब्जा है। इसलिए धनबल, बाहुबल समेत तमाम दांवपेंच राजनीति में आजमाए जाते हैं। छात्रों को लालच देकर चुनाव जीते जाते हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्र राजनीति चुनाव संस्कृति पर एक नजर :

एक दिन मैंने डीयू कैंपस स्थित पटेल चेस्ट के पास एक चाय की दुकान पर दिल्ली विश्वविद्यालय से अभी अभी ग्रेजुएट हुए एक प्रतिभाशाली छात्र से मिल रहा था (महाशय ऐसे छात्र हैं जो चेहरे से ही प्रतिभाशाली लगते हैं। बढ़ी हुयी दाढ़ी, अस्त व्यस्त कपड़े और हर बात शायराना अंदाज में कहते हैं) जब मैंने उनसे डीयू के तथाकथित आधुनिक परिवेश और

छात्र राजनीति से सबन्धित उनका अनुभव पूछा तो वो पहले चुप हो गए, फिर बोले - "डीयू भ्रमों का महाजाल है, नौजवान सपनों व उम्मीदों की कब्रगाह है।' मैंने उस साथी की बात सुनकर अपने आप को यें मनवाने की तमाम कोशिशें कीं कि ये उसकी अपनी निजी कुंठा हो सकती है, या उसने ऐसे ही बोल दिया। लेकिन बुद्धि की तलवार मानती ही नहीं, वो कहती है कि सच्चाई चुप्पी में भी चीखती है, उसे दबाये रखना आसान नही है।

डीयू को देश के उच्च शिक्षा, खासकर, मानविकी के सबसे बड़े केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठा मिली हुयी है। दिल्ली भर में फैले इस विश्वविद्यालय ने अनेक बुद्धिजीवी, कलाकार, राजनीतिज्ञ अफसर और अन्य क्षेत्रों में नामचीन हस्तियाँ देश व दुनिया को दी है। लेकिन क्या डीयू की वही स्थिति आज भी है? क्या डीयू का मतलब केवल प्रवेश के लिए सौ फीसदी कटऑफ का होना है? क्या डीयू होने का मतलब केवल रूमानी सर्दियों में महीनों तक चलने वाले और करोड़ों रुपये फूँककर होने वाले वो भौंडे प्रदर्शन भर हैं जिन्हे फैस्ट कहते है? क्या इस विश्वविद्यालय की सांस्कृतिक सामाजिक झलकी केवल इन विसंगतियो भरे आयोजनों में होती है? ऐसा क्या हो रहा है की डीयू के छात्रों की राजनीतिक, सामाजिक

चेतना का निर्माण ऐसे हो रहा है कि चुनावों से ठीक पहले कॉलेजों के सामने बस लग जाती है और इसमें छात्र बैठ जाते हैं। बड़ी आसानी से एक दिन किसी बार, रेस्टोरेंट या वाटर पार्क में पार्टी देकर इनके प्रतिनिधि इनका मत ले जाते हैं। क्या छात्रों से सम्बन्धित सारे मुद्दे खत्म हो चुके हैं? क्या अब डीयू के छात्रों को कोई परेशानी नहीं होती है? फिर क्यों डीयू अपना प्रतिनिधि चुनने में इतनी लापरवाही करता है? डीयू आज-तीसरी दुनिया के देशों और भारत में अपनी जड़ जमा रही है नवपूंजीवाद व्यवस्था से पैदा हुई नयी पीढ़ी-नई शिक्षा-व्यवस्था के कारण छात्र राजनीति में संघर्ष के तौर-तरीकों और संरचनात्मक बदलावों का सबसे बड़ा उदाहरण है। हर मायनों में डीयू के अपने मानक हैं और यह मानक तय करता है डीयू का सबसे बड़ा एलीट तबका! स्टीफेंस, श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स आदि के छात्र और अन्य कॉलेजों में भी पढ़नेवाला यहीं तबका। इसकी बहुचर्चित छवि जो बॉलीवुड की फिल्मों और अंग्रेजी के बेस्टसेलर, उपन्यासों में दिखती है वह इसी तबके के छवि है; पूरे डीयू की नहीं। बाकी छात्र समुदाय भी डीयू में आते ही इसी तबके जैसा बनने की कोशिश में लग जाता है या लगा दिया जाता है।

लेकिन छवि बनाये रखना आम छात्रों के बस की बात नही है। एक छात्र ने हमसे बातचीत में बताया कि वह जानता है कि "वाटर पार्क" जाना ही मेरे वोट की कीमत नही है लेकिन कुछ नहीं से बेहतर कुछ होता है। वैसे भी मैं अपने पैसे से वाटर पार्क नही जा सकता हूँ। मेरे दोस्त जाते हैं और तस्वीरें पोस्ट करते हैं। मुझे भी जाने का मन करता है। मेरे वोट देने से कोई फर्क नही पड़ता। तो अगर कोई एक दिन भी मुझे वाटर पार्क ले जाए, पार्टी दे, तो चला जाऊँगा।'

यहाँ की छात्र राजनीति में भी वर्चस्व धन-बल और पहचान की राजनीति करने वाले लोगों का ही है। जिन्हे बाजार का खुले हाथों समर्थन तो है। साथ में लिंगदोह कमेटी जैसे छात्र राजनीति विरोधी हथियार भी इन्ही की मदद करते हैं। पिछले बीस वर्षों से डूसू (दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ) पर लगभग हर बार देश की दो सबसे बड़ी राजनीतिक पर्टियों भाजपा व कांग्रेस की छात्र इकाइयों क्रमशः एबीवीपी और एनएसयूआई का ही कब्जा रहा है। हालांकि अन्य दर्जन भर संगठन सक्रिय है। जिनमे आइसा, एसएफआई, आइएसएफ, एआई-डीएसओ, डीएसयू आदि प्रमुख है। आइसा 2013 में आठ हजार वोटो के साथ तीसरे स्थान पर रही थी।

एबीवीपी और एनएसयूआई की राजनीति साफ है। डीयू में हरियाणा और उत्तर प्रदेश में आने वाले तथा दिल्ली मे रहने वाले जाट गूर्जर अधिक है। डीयू की राजनीति में सबसे महत्वपूर्ण तबका यही है। इनमे से वर्चस्वशाली और धन-बल वाले वैसे लोग जिनकी राजनीति में घुसने की महत्वकांक्षा होती है उसके लिए सबसे आसान व बेहतर विकल्प है डूसू की राजनीति। अगर उम्मीदवार ऊंची पहुँच व पैसे वाला हुआ तो सीधे डूसू और थोड़ा कमजोर है तो कॉलेजो की राजनीति। डीयू में एक से एक सूरमा है जो पिछले दसियों सालो से चुनावों के ठीक पहले कॉलेजो के बाहर दिख जाएंगे। इनका काम होता है चुनाव लड़वाना। अपने-अपने समुदाय के लोगो की गुटबाजी और डूसू में बड़े नेताओं के लिए कॉलेजों में वोट बैंक तैयार रखना इनका काम होता है। लिंगदोह कमेटी के निर्देशो के अनुसार अनेक पाबंदियो के चलते ये अधिकांशत: फर्स्ट इयर के ही छात्रों को ही चुनाव लड़वाते है; क्योकि चुनाव लड़ने वाले अक्सर फेल हो जाते है या (अटेंडेंस कम) होने के कारण उनका नामांकन खारिज हो जाता है। टिकट मिलने से पहले तक ये लोग नही बताते कि किस संगठन से है, और अपने नाम से

प्रचार करते हैं। जगह-जगह दीवारों पर लिंगदोह सिफारिशों की धज्जियां उड़ाते हुए रंगीन पोस्टर पूरी दिल्ली में देखने को मिल जाएँगे। एनएसयूआई और एबीवीपी भी फ्रेशर पार्टी में नामचीन लोगो को बुलाते है; जिसमे छात्रों को फ्री पास बांटा जाता है, जिसका खर्चा टिकट मिल जाने पर या पहले से ही उम्मीदवार उठाते है। अधिकतर छात्र इन गतिविधियों से भी राजनीति से दूर हो जाता है। इसू चुनाव में केवल 30-35 प्रतिशत वोट पड़ते है। मात्र चौदह हजार वोट लेकर तीन लाख के लगभग छात्रो के प्रतिनिधि चुन लिए जाते है।

एक रोचक बात है कि डिपार्टमेंट ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज इसू के नेताओ का प्रिय विभाग है; क्योकि यहां आसानी से एम.ए में एडमिशन मिल जाता है। डीयू के पूर्व अध्यक्ष अमन अवाना भी वहीं से प्रथम वर्ष के छात्र है; इन्होने ग्रेजुएशन दयाल सिंह कॉलेज से किया और सेन चुनावों से पहले उन्होंने एबीवीपी ज्वाइन किया और जीत गए।

डीयू के छात्रों ने तीन चार संघर्षो में हिस्सा लिया और कमोबेश उनका राजनीतिकरण भी हुआ है। अन्ना आंदोलन हो या चार साल के पाठ्यक्रम के खिलाफ या दामिनी आंदोलन, डीयू के छात्र बड़ी संख्या में मौजूद थे। लेकिन साथ ही ये सवाल उठता है कि जो

छात्र इन आंदोलनों में झंडे, टोपी और मोमबत्तियों के साथ मौजूद रहते हैं, वे अपनी समस्याओं के लिए सक्रिय क्यों नहीं होते ? जो कमोबेश राजनीतिकरण हुआ है अगर उसे बरकरार रखा जाएं तो हालात काफी हद तक सुधर सकते हैं।

• विशाल पाण्डेय
(एम. ए. हिन्दी)
पी. जी. डी. ए. वी
महाविद्यालय

साहित्यिक गतिविधियाँ

हिंदी विभाग द्वारा आयोजित 'लेखक से मुलाकात' शृंखला के अन्तर्गत इस बार 6 अक्तूबर 2016 को प्रख्यात कवयित्री, लेखिका एवं आलोचक अनामिका जी को आमंत्रित किया गया। इस अवसर पर हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष की छात्राओं ने उनकी चर्चित कविता 'बेजगह' पर एक प्रभावशाली नाट्य प्रस्तुति पेश की। रचना और रचनाकार को समझने की यह पहल निश्चित ही सराहनीय रही। इस मुलाकात में अनामिका जी ने अपने रचना कर्म, अनुभव और जीवन-प्रसंगों को छात्राओं के साथ साझा किया। साथ ही उन्होंने पितृ-सत्तात्मक समाज की जकड़न, स्त्रियों की स्थिति और उनके संघर्ष तथा अपनी कविताओं में आए नारी के विविध रूपों पर चर्चा भी की। गंभीरता और बोझिलता से परे बेहद आत्मीयपूर्ण वातावरण में उन्होंने छात्राओं के प्रश्नों और जिज्ञासाओं का समाधान भी किया।

11 जनवरी 2017 को विभाग द्वारा बेगम अख्तर पर (Documentary) वृत्तचित्र दिखाया गया।

13 फरवरी 2017 को तृतीय वर्ष, हिंदी-विशेष की छात्राओं ने डॉ. रेणु अरोड़ा के कुशल निर्देशन में स्वदेश दीपक के चर्चित नाटक 'कोर्ट मार्शल' का सफल मंचन किया। इस वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय

द्वारा आयोजित 'उड़ान' नाट्य उत्सव में भी द्वितीय वर्ष, हिंदी विशेष की छात्राओं ने प्राध्यापिका रमा यादव के सफल निर्देशन में सामाजिक परिवर्तनों, बाह्याडम्बरों, रूढ़िवादिता तथा स्त्री चेतना के प्रश्नों को लेकर- 'अनहद की शुरुआत' शीर्षक से नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किया था। बाद में इन छात्राओं को N.S.D में नाट्य कार्यशाला में भी जाने का सुअवसर मिला।

-विभाग द्वारा दो दिवसीय (27-28 फरवरी) वार्षिक साहित्योत्सव कराए जाने की योजना है। जिसमें अन्तर्महाविद्यालयी स्तर पर स्वरचित कविता, साहित्यिक प्रश्नोत्तरी, आशुभाषण जैसी प्रतियोगिताओं के अतिरिक्त Power Point Presentation प्रतियोगिता भी आयोजित की जाएगी। दूसरे दिन संगीत नाटक अकादमी के प्रावधान से कत्थक नृत्यांगना प्रतिभा सिंह एवं उनके साथी 'वसंतविलास' नृत्य नाटिका प्रदर्शित करेंगे।

विभाग का प्रयास सदा से ही छात्राओं को साहित्य के साथ-साथ रंगमंच, कला, रचनात्मक लेखन, मीडिया और सिनेमा आदि विविध क्षेत्रों में भी समृद्ध करने का रहा है। इस दिशा में विभाग की सभी प्राध्यापिकाओं का सक्रिय योगदान निश्चित ही काबिले-तारीफ है। अपनी इस यात्रा में विभाग अभी कई मील के पत्थर स्थापित करेगा। — आगामी भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ !!

•

साहित्य संसार

इस वर्ष कुछ चर्चित एवं युवा साहित्यकारों को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। सभी साहित्यकारों को हार्दिक बधाई!!

वरिष्ठ आलोचक गोपेश्वर सिंह को डॉ. रामविलास शर्मा आलोचना सम्मान 2015 से सम्मानित किया गया।

डोगरी की प्रख्यात लेखिका पद्मा सचदेव को 25 वें सरस्वती सम्मान से नवाजा गया। उन्हें यह सम्मान उनकी आत्मकथा 'चित्त चेते' पर साल 2015 के लिए दिया गया।

वरिष्ठ साहित्यकार विश्वनाथ त्रिपाठी को उत्तर प्रदेश के सबसे बड़े पुरस्कार 'भारत भारती सम्मान' से सम्मानित किया।

सावित्री बाई फुले वैचारिकी सम्मान 2016, दलित स्त्री चिन्तक अनीता भारती को उनकी पुस्तक 'समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध' पर दिया गया।

वाणी प्रकाशन और टीमवर्क आर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड वाणी फाउंडेशन की ओर से दिया जाने वाला विशिष्ट अनुवादक पुरस्कार इस वर्ष प्रख्यात अनुवादक, कवयित्री, लेखिका और आलोचक अनामिका को देने की घोषणा की गयी है।

भारत भूषण अग्रवाल कविता पुरस्कार 2016 -
युवा कवयित्री शुभम् श्री को उनकी कविता 'पोएट्री मैनेजमेंट' को देने का निर्णय किया गया। यह कविता नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाली अनियतकालीन पत्रिका जलसा - 4 में प्रकाशित हुई है।

रंगमंच और सामाजिक बदलाव में अभूत - पूर्व योगदान के लिए 'अस्मिता थियेटर ग्रुप' की संस्था शिल्पी मारवाह को दिल्ली सरकार द्वारा सम्मानित किया गया।

इस वर्ष साहित्य अकादमी के प्रतिष्ठित पुरस्कार हिंदी के लिए नासिरा शर्मा (उपन्यास: पारिजात) उर्दू के लिए निज़ाम सिद्दीकी, अंग्रेजी के लिए जेरी पिंटो और संस्कृत के लिए सीतानाथ आचार्य शास्त्री सहित 24 भाषाओं के रचनाकारों को देने की घोषणा की गयी।

वर्ष 2016-17 में साहित्य जगत के कुछ से रचनाकार हमसे विदा हो गए। इनमें- महाश्वेता देवी, प्रभाकर श्रोत्रिय, कथाकार वीरेन्द्र सक्सेना, गांधीवादी पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र शामिल है। इन सभी के निधन से साहित्य जगत की अपूरणीय क्षति हुई है। इन सभी को हमारी भावभीनी श्रद्धांजलि !!

•